२१८

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

54

गीता-दर्शन

[७]

संकलनकर्त्री

श्रीमती सरला बसन्तकुमार बिरला

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट

गीता-दर्शन

[७]

अनन्तश्री स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

श्रीमती सरला बसन्तकुमार बिरला
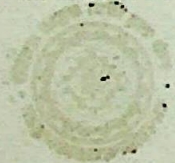
विश्वात्मा प्रीयताम्

ऋग्वेदमें एक मन्त्र है—मेरा हाथ भगवान् है। भागवतमें प्रार्थना है—भगवान् मेरी वाणीका शृङ्गार करें। महात्माओंका वचन है—हृदयका उत्साह ही सफलताकी कुञ्जी है। भगवान् मेरी वाणीपर बैठ गये। श्रीमती सरला बिरलाका हाथ भागवतशक्तिसे भरपूर हो गया। श्रीमान् बसन्तकुमार बिरला उत्साहसे भर गये। गीता-दर्शनका सप्तम भाग आपकी आँखोंके सामने है। इससे विश्वमानवके रूपमें मूर्तिमान् भगवान् प्रसन्न हों। सबके हृदयमें, जीवनमें, कर्ममें हितभावनाका प्रकाश हो।

अनेन कर्मणा विश्वात्मा भगवान् प्रीयताम्।

—अखण्डानन्द सरस्वती
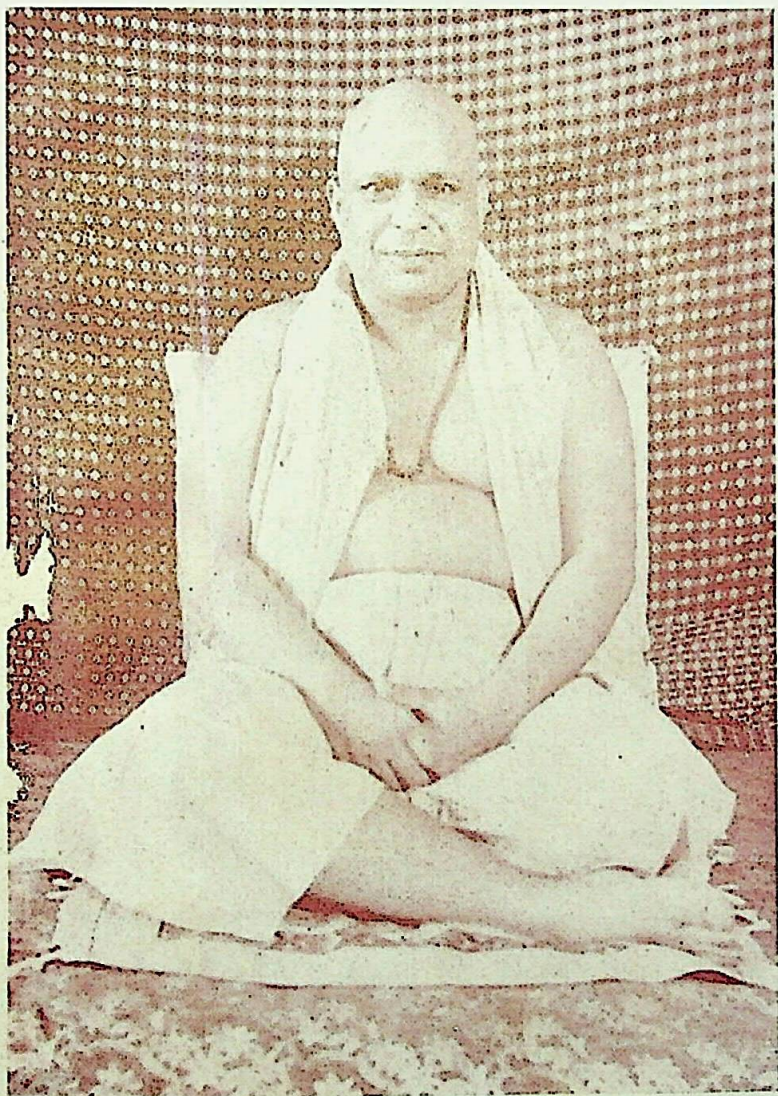
अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

प्रवचन—१

(१०-११-'८०)

श्रीमद्भागवद्गीताका एक प्रसिद्ध वाक्य है—

मामनुस्मर युध्य च । (८.७)

मेरा स्मरण करो और युद्ध करो। इस वाक्यकी व्याख्या दसवें अध्यायमें पूर्ण रूपसे की गयी है। गीताके दसवें अध्यायमें दो पदार्थोंका वर्णन है। एक है योग और एक है विभूति। अर्जुनके प्रश्नमें है—

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ (१०.१८)

आप योगका उपदेश कीजिये। विभूतिका भी उपदेश कीजिये। श्रीकृष्णके वचनमें है—

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ (१०.७)

हमारी विभूति और योग, इन दोनोंको जो जान लेता है, उसको अविकम्प योगकी प्राप्ति होती है। अविकम्प योगका अर्थ है, जो योग एक-कालिक न हो, एक-देशिक न हो, एक-व्यक्तिक न हो। अविकम्प योग—कभी काँपे नहीं, कभी हिले नहीं, कभी चले नहीं। समाधिमें भी रहे और व्यवहारमें भी रहे। जो योग समाधिमें रहता है और व्यवहारमें नहीं, वह विकम्प योग है।

समाधिमें लगे तो व्यवहार छूट गया और व्यवहारमें लगे तो योग छूट गया। दोनों परस्पर विरोधी हो गये। ऐसा जो योग होगा वह विकम्प योग होगा।

योग ऐसा चाहिए—**विकम्पेन योगेन**—ज़ो दोनोंमें एक-सा रहे। वह कैसे होगा ? इसके लिए दोनों बातें पहचाननी पड़ेंगी। यह व्यवहार क्या है? यह भगवान्‌का वैभव-विभूति और भगवान्‌का योग क्या है? उनका अनुस्मरण—यह है योग। जब आप समाधिमें हों तो परमात्माके योगमें स्थित हो जायँ और जब व्यवहारमें हों तो भगवान्‌की विभूतिमें, वैभवमें स्थित हो जायँ। जो विभूति है, विशिष्ट भवन—ईशावास्य उपनिषद्‌में 'संभूति' शब्द द्वारा इसको कहा गया है। संभूति और असंभूति।

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते॥ (१४)

मृत्युका संतरण होता है। मौतसे पार जानेका उपाय है—व्यवहार बिलकुल ठीक-ठीक रहे। और अमृतत्व प्राप्तिका उपाय क्या है? संभूतिमें स्थित हो जायँ। दोनोंसे हमारा यह जीवन चलता है। जैसे विश्राम न हो तो व्यवहार करनेकी शक्ति भी क्षीण हो जायेगी; यदि आप काम न करें तो नींद नहीं आयेगी। और नींद नहीं लें तो काम नहीं कर सकेंगे। जैसे—विश्राम और कर्त्तव्यपालन दोनों जीवनके अङ्ग हैं, इसी प्रकार भगवत्स्मरण और स्वधर्मका, स्वकर्त्तव्यका पालन ये जीवनके अङ्ग हैं। अतः **मामनुस्मर युध्य च** इस महावाक्यकी व्याख्या करनेके लिए यह दसवाँ अध्याय प्रारम्भ हुआ है। सातवें और नवें अध्यायमें भी भगवान्‌ने विभूतिका वर्णन किया है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। (७.८)

यह सूर्यमें कौन चमक रहा है? चन्द्रमामें कौन चमक रहा है?

और इस चमकसे कितनी चीजें बनती है ? इसपर आप ध्यान दें। यह आप जो देखते हैं—लाल, पीला, हरा—यह वृक्षोंकी हरियाली, यह पुष्पोंकी सुन्दरता। ये जो नाना प्रकारके स्वाद हैं—इसमें जल तो एक ही है। जल योग है और उसमें जो नाना प्रकारके स्वाद हैं वे विभूति हैं। यह जलका वैभव है कि वह मिठास भी दे दे और खटास भी दे दे। जल तो एक है परन्तु उसमें जो अनेक प्रकारके रस हैं—वे जलकी विभूति हैं। पृथिवी तो एक ही है परन्तु उसमें जो तरह-तरहके इत्र बनते हैं, तरह-तरहके गन्ध बनते हैं, वह पृथिवीका वैभव है। ऊष्मा, तेजस्-तत्त्व तो एक ही हैं, परन्तु उससे जो आप भिन्न-भिन्न प्रकारकी मशीनें चलाते हैं वह उसका वैभव है।

प्राण तो एक ही है, परन्तु ऊपर जानेवाला प्राण दूसरा, आँखको हिलानेवाला प्राण दूसरा, हाथको उठानेवाला प्राण दूसरा, रक्तको ठीक-ठीक चलानेवाला प्राण दूसरा। एक ही वायु अनेक प्रकारकी विभूति, वैभव अपने जीवनमें प्रकट करता है। आकाश तो एक ही है परन्तु वह बाँसुरीमें कुछ और बोलता है, तबलेमें कुछ और बोलता है, हारमोनियममें कुछ और बोलता है, सितार, सारंगी, वीणामें कुछ और बोलता है; यह जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी स्वर-लहरी है, यह आकाशकी विभूति है।

यह जो आप संसार देख रहे हैं, वह क्या है ? सबके भीतर छिपे हुए, बैठे हुए जो भगवान् हैं उनकी यह विभूति है। यदि आप इस दृश्यमान प्रपञ्चको विभूतिके रूपमें पहचान लें तो आप जहाँ कहीं रहेंगे, भगवान्से जुड़े रहेंगे। भगवान्के भूलनेका जीवनमें कोई प्रसंग ही नहीं रहेगा, यदि आप इस विभूतिको, इस वैभवको पहचान लें। इसीसे उपासना-शास्त्रमें जब सर्वात्मक भगवान्का वर्णन आता है, तो कहते हैं कि भोग और मोक्ष दोनोंकी सिद्धि

भगवान्‌से होती है। भक्ति-शास्त्र और तन्त्र-शास्त्र, वह चाहे द्वैत-प्रधान हो, चाहे अद्वैत-प्रधान, भोग और मोक्षका युगपत्—एक साथ वर्णन करता है। हम ऐसी साधना आपको बताते हैं, जिसमें भोग तो छूटे नहीं और मोक्ष मिल जाय और मोक्षसे आप वञ्चित न हों और संसारका व्यवहार करते रहें।

यह गीता-शास्त्र आपके व्यवहारको भी परमार्थ बनानेके लिए अवतीर्ण हुआ है। श्रीकृष्णकी वाणीमें यह चमत्कार देखनेमें आता है। उद्धवजीसे कहते हैं—'तुम सब छोड़कर मेरे पास आजाओ। आत्मसर्पण करो।' अर्जुनसे कहते हैं—'तुम सब लेकर मेरे पास आजाओ। यह तुम्हारा युद्ध कर्म भी मेरे लिए हो। हमारे जीवनके सारे कार्य-कलाप परमेश्वरकी दृष्टिसे होवें।' गीताका यह मुख्य उपदेश है। उद्धवजीको कहते हैं, सब छोड़कर बदरीनाथ आओ और मेरी शरणमें रहो। अर्जुनको कहते हैं—'युद्ध करो और मेरे लिए करो।'

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर। (३.९)

मेरे लिए सारे कर्म करो। अम्बरीषसे कहते हैं—पवित्र होकर, धर्मानुष्ठान करो और उपासनाके द्वारा एकादशी आदि व्रत करके, पवित्र होकर मेरे पास आओ और गोपियोंसे कहते हैं—तुम जैसे हो, जहाँ हो, जो हो—कुछ सम्हालो मत, जैसे हो वैसे ही मेरे पास आजाओ।

ये आत्मसमर्पणके चार प्रकार हैं। सब छोड़कर परमात्मासे मिलो, सब लेकर परमात्मासे मिलो, पवित्र होकर परमात्मासे मिलो और पवित्र-अपवित्र जैसे भी हो वैसे ही—जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावा—परमात्माकी ओर चल पड़ो। अपनी ओर मत देखो कि मैं पवित्र हूँ कि अपवित्र; परमात्माकी ओर देखो कि उनके पास जो जाता है वह पवित्र हो जाता है, पवित्रतम हो जाता है,

परमात्मासे एक हो जाता है। नवें अध्यायमें भी विभूतियोंका वर्णन है।

> पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
> वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च॥
> गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
> प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
> तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
> अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥ (९.१७-१९)

भगवान्की विभूति है—वे ही सबके पिता हैं—माता, धाता, पितामह। 'तपामि'—मैं ही गरमीके रूपमें प्रकट होता हूँ, मैं ही वर्षाके रूपमें प्रकट हूँ, यह वैभव है। भगवान् तपते हैं, यह उनकी विभूति है। मेघ बरसते हैं, यह भगवान्की विभूति है। मैं ही दण्ड देता हूँ और मैं ही मुक्त करता हूँ। मैं ही पकड़ता हूँ, मैं ही छोड़ता हूँ। अमृत भी और मृत्यु भी, भगवान्का वैभव है। अच्छा-बुरा जो कुछ सृष्टिमें है वह सब भगवान्का वैभव है, भगवान्की विभूति है। ग्यारहवें अध्यायमें कहा गया है।

> सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः। (११.४०)

आप सबमें व्याप्त हैं इसलिए सब हैं। इसलिए सब हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा तो हमको किसी भी स्थितिमें छोड़ता नहीं। हम अच्छी स्थितिमें हों, हम बुरी परिस्थितिमें हों, पापमें हों, पुण्यमें हों, सुखमें हों, दुःखमें हों, मन चञ्चल हो कि स्थिर हो, हम काम कर रहे हों कि निकम्मे हों—परमात्मा तो हमको छोड़कर कहीं जाता नहीं है परन्तु हमारा ध्यान इस बातपर नहीं जाता कि परमात्मा हमारे साथ है। हमारे ध्यानकी, हमारे अवधानकी, हमारे ख्यालकी कमी है, हमारी भावनाकी कमी है, कल्पना-शीलताकी कमी है कि हम परमात्माको भूल जाते हैं। वह तो

पक्षियोंमें बैठकर चहकता है, वह तो वृक्षोंमें लहराता है, वह तो फूलोंमें खिलता है। वह स्त्री-पुरुष बनकर नाना प्रकारकी क्रीडा कर रहा है। परमात्मा हमसे दूर नहीं है। विभूति और योग दोनोंका अर्थ यह हुआ कि हम परमात्माके स्वरूपका केवल ध्यान रखें। चाहे काम करते हुए हों और चाहे काम न करते हुए हों। समाधिमें हों तो ठीक, व्यवहारमें हों तो ठीक। दोनोंमें परमात्मापर हमारी दृष्टि रहे। **अमृतश्चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।** सत् भी वही—असत् भी वही। अमृत भी वही, मृत्यु भी वही। इसीसे विभूतियोंका जहाँ वर्णन दशम अध्यायमें हुआ, वहाँ मृत्युके रूपमें भी भगवान्‌ने अपनेको बताया।

मृत्युः सर्वहरश्चाहम्। (१०.३४)

कालः कलयतामहम्। (१०.३०)

यह जो क्षण-क्षण दीख रहा है वह काल नहीं, क्रम नहीं—जितना क्रम मालूम पड़ता है—बचपन आया, जवानी आयी, बुढ़ापा आया। जिनका आकलन होता है और जो आकलन करते हैं—यह सारी गणना, यह सारा क्रम परमात्मामें है। क्षण-क्षण परमात्मामें हैं, कण-कण परमात्मामें है और जो सबको हर लेनेवाला मृत्यु है, वह मृत्यु भी परमात्माका स्वरूप है। कितनी निर्भयताकी बात है जीवनमें। लोग मौतसे डरते हैं, हाय! हाय! मर न जायँ। मृत्यु भी जीवनका एक अवश्यम्भावी रूप है और परमात्माका रूप है। मरनेके डरसे अपने कर्तव्यका परित्याग नहीं करना चाहिए। अपने कर्तव्यका पालन करते चलो—

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपस्विनः।
वयं हनामभिषतः सर्वः स्वार्थं समीहते॥

(शिशुपाल वध २.६५)

सूर्य तपे, इन्द्र बरसे, वायु चले, आग तपे, जीवन रहे, मृत्यु आवे; हम अपने कर्त्तव्य-पथसे विचलित क्यों हों ? हम अपना काम करते चलें। यह मूल दृष्टिकोण लेकर गीताका दसवाँ अध्याय प्रवृत्त होता है। भगवान्‌की वाणीकी पहचान है। वह क्या है—जो सबकी भलाईके लिए हो, जिसमें कहीं भी जातिका, सम्प्रदायका, वर्णका, राष्ट्रका पक्षपात न हो, लिङ्गभेद भी न हो, स्त्री-पुरुष सबके लिए हो। पशु-पक्षी, देवता-दैत्य सबके लिए हो। सब भगवान्‌के बालक हैं, सबकी उन्नति हो, सबमें सद्भाव आवे, सबमें चिद्भाव आवे, सबका ज्ञान बढ़े और सब अच्छे-अच्छे काम करें, और सब सुखी रहें। जो सबको अच्छाईमें लगानेके लिए, सबको श्रेष्ठ ज्ञान देनेके लिए और सबको आनन्दित करनेके लिए वाणी होती है, वह भगवान्‌की वाणी होती है। दसवें अध्यायके प्रारम्भमें भगवान् स्वयं बोलते हैं—बिना पूछे। कितनी कृपालुता है ईश्वरकी, इसपर ध्यान दें। मनुस्मृतिमें तो कहा है कि बिना पूछे बोलना ही मत—

नापृष्ठः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः। (२.११०)

बिना पूछे किसीको बतावे नहीं और यदि पूछनेवाला अन्यायसे पूछता हो तो भी नहीं बतावे। जानते हुए भी न बतावे। बात समझमें आ रही है, फिर भी न बतावे। मूर्खकी तरह रहे। चुप हो जावे। यह मनुस्मृतिका उपदेश है। और भगवान्‌का जो उपदेश है, वह इस प्रकार है—एक अन्धा आदमी जा रहा है, उसके सामने गड्ढा है, तुम देख रहे हो कि वह अन्धा है, उस समय क्या करोगे ? तुम बिना पूछे न बतानेका नियम लेकर बैठे हो। अरे भाई, अगर वह गड्ढेमें गिर रहा हो तो बिना पूछे भी उसको बता देना चाहिए। यदि वह अन्धा गड्ढेमें गिर जावे तो एक श्रेष्ठ पुरुषका क्या लाभ होगा ? भगवान् अर्जुनको बिना पूछे बताते हैं—'श्रीभगवानुवाच'। तुम्हारी दृष्टिमें किसीका अहित

हो रहा है, वह अपना अहित करने जा रहा हो तो उसे बोलकर बता देना चाहिए। और भगवान्‌ने अज्ञानियोंको तो समझानेका ठेका ही लिया है। जो नहीं जानते हैं, उनको समझाओ, जो पतित हैं, उनको भी—साथ ले लो, जो पिछड़े हुए हैं उनको साथ ले लो। नवें अध्यायमें है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। (९.३०)

दुराचारी पुरुषको भी छोड़ो मत। यदि वह ठीक रास्तेपर चलेगा तो **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।** (९.३१) तत्काल वह धर्मात्मा हो जावेगा। जो कर्मसे हीन है, उसको भी अपने साथ लो। जो उत्तम जातिके हैं, उत्तम कोटिके हैं, उनको तो लेकर चलना ही है। लेकिन जो कर्मसे, जातिसे हीन हैं, उनको भी अपने साथ लेकर चलो। अर्जुन चुप हैं, लेकिन भगवान् बोल रहे हैं। असलमें भगवान् बोलते तभी हैं, जब आदमी चुप होकर उनकी बात सुनना चाहे। श्री भगवानुवाच—

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(१०.१–३)

अर्जुनके लिए 'महाबाहो' शब्द कहा। किसीको काममें लगाना हो तो आप उसको निरुत्साह मत कीजिये। यह मत कहो कि तुम यह काम कर ही नहीं सकते। यह बोलनेकी शैली है। 'महाबाहो'— तुम्हारो बाँह बड़ी लम्बी है, तुम बड़े शक्तिशाली हो, तुम क्या

नहीं कर सकते ! हम जानते हैं कि तुम इस जीवन-युद्धमें विजयी बनोगे। यह तुम्हारे बड़े-बड़े हाथ तुम्हें पराजित नहीं होने देंगे। उत्साह करो। उत्साहमें लक्ष्मीका निवास है। जो उद्योगी श्रेष्ठ पुरुष हैं, उसके पास लक्ष्मी स्वयं आती है। 'महाबाहो'—'भूय एव'—जैसी बात मैंने पहले सातवें, आठवें, नवें अध्यायमें कही है, ठीक उसी प्रकारकी बात तुमको फिर कहने जा रहा हूँ। यदि एक बात दो बार, तीन बार कही जाय तो मीमांसक लोग कहते हैं—यह बड़े कामकी बात है। श्रीकृष्णने कहा—'मैं तुम्हें दुबारा सुनाता हूँ।' क्या सुनाते हैं ? एक प्रामाणिक वचन, तुमको सुनाता हूँ। **शृणु मे परमं वचः।** सावधान होकर सुनो—'शृणु'का अर्थ है—सावधान होकर सुनो और **मे परमं वचः, मम वचः।** यह मेरी बात है—किसी साधारण अनुभवीकी बात नहीं है। असाधारण, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टाकी बात है। और बात भी कैसी है ? 'परमम्'—माने जिसमें पूरी प्रामाणिकता हो। **परा मा प्रमा यस्मिन् परमं वचः।** पूरी-पूरी प्रामाणिक बात है यह। **यत्तेहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।** तुम मेरी बात सुनकर खुश होते हो। 'प्रीयमाण' माने मैंने दूसरे अध्यायसे लेकर अबतक नवें 'अध्यायतक' जो कहा, उसको सुनकर तुम तृप्ति अनुभव करते हो, प्रीति अनुभव करते हो, तुम्हें इसमें आनन्द आता है, तुम इसको अपनी उन्नतिका साधन समझते हो। तुम्हें सुख देनेके लिए, प्रसन्नता देनेके लिए फिर बोलेंगे। बोलना तो तभी चाहिए कि जो बात बोली जावे उससे उसका हित हो, प्रसन्नता हो।

यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।

प्रसन्नता योग है, प्रसाद योग है और हितकाम्या विभूति है। किसीका भला करना, हित करना यह विभूति है। वैभव वहीं है जो दूसरेके काममें आता है। योग अपने काममें आता है और

विभूति दूसरोंके काममें आती है। जहाँ हमारी आत्मशुद्धि भी हो, आत्म-साक्षात्कार भी हो, और दूसरोंका भला भी हो, ऐसी बात मैं सुनाता हूँ। 'वक्ष्यामि' शब्दका अर्थ संस्कृतमें दो तरहसे होता है। एक तो 'कहूँगा' और एक होता है 'ढोऊँगा'। मैंने तुम्हारे लिए यह बात बहुत दिनोंसे अपने मनमें पालकर रखी है, सोचता रहा हूँ कि कब मौका मिले और कब अर्जुनको यह समझाऊँ? अपने भक्तके लिए, अपने प्रेमीके लिए भगवान् बोझ भी ढोते हैं। यह बात आजतक छिपाकर रखी थी।

अर्जुन, तुमसे मैं 'हितकाम्या'से यह बात कहता हूँ— 'हितकाम्या'का अर्थ है—तुम्हारा हित जिसमें है वह सुनाता हूँ। हित चाहना विभूति है और प्रियमाणता योग। तुम मेरी बात सुनकर प्रसन्न होते हो तो मुझसे एक हो जाते हो और जब तुम लोगोंके भलेमें लग जाते हो, हित-साधनमें लग जाते हो, तो हमारे वैभवका विस्तार करते हो। हमको जानना सरल नहीं है।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

आँखको क्या दीखता है कि हमारे अन्दर रोशनी कहाँसे आरही है? ये देवता हैं। कामको मालूम नहीं कि भीतर वह कौन-सी चीज है जो सुन लेती है। आँखको मालूम नहीं कि वह देखनेवाली रोशनी कहाँसे आती है। जीभको मालूम नहीं कि स्वाद ग्रहण करनेकी शक्ति कहाँसे आती है।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

महर्षि भी नहीं जानते। सात ऋषि हैं। जिनको ज्ञान हो उनको ऋषि कहते हैं। दोनों कानोंके रूपमें ऋषि हैं, जो हमें दूसरेकी बात सुननेकी शक्ति देते हैं। देवता हैं, वे विभूति हैं और

ऋषि हैं, वे योग हैं। ज्ञान होता है अन्तरङ्गमें और ये इन्द्रिय-शक्तियाँ बाहरसे ग्रहण करती हैं। देवता देवनशील हैं।

ऋषि दर्शनशील होते हैं। देवता और ऋषि क्यों नही जान पाते इसका कारण बताते हैं। **अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।** जहाँसे ये देवता प्रारम्भ होते हैं वहाँ मैं हूँ। जहाँसे ये ऋषि प्रारम्भ होते हैं, वहाँ मैं हूँ। एक बहुत सीधी तथा सबके अनुभवकी बात आपको सुनाता हूँ—कोई बता सकता है कि पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कहाँसे शुरू होता है? घूमने चले जाओ—जिधर सूर्य उगता है—उसके पहले पूरब और जहाँ सूर्यास्त होता है उधर घूमने चले जाओ—उसके बाद पश्चिम, जो पूर्व तथा पश्चिमको ढूँढ़नेके लिए सूर्योदय तथा सूर्यास्तकी ओर जायेगा उसे कभी पूर्व और पश्चिमकी प्राप्ति न हो सकेगी। वह केवल अज्ञानमें भटक जायेगा। जहाँ आपका 'मैं' है वहाँसे एक ओर पूरब प्रारम्भ होता है और एक ओर पश्चिम प्रारम्भ होता है। आप जहाँ बैठे हैं वहींसे, घरमें बैठे हैं तो वहींसे, धर्मशालामें बैठे हैं तो वहींसे, मन्दिरमें बैठे हैं तो वहाँसे—आपका 'मैं' ही पूर्व-पूर्वकी आदि है और आपका 'मैं' ही पूर्वका अन्त है। आपका 'मैं' ही पश्चिमकी आदि है और आपका 'मैं' ही पश्चिमका अन्त है।

यदि आपको पूर्व और पश्चिमका सच्चा पता लगाना है तो आपको अपने 'मैं'के भीतर बैठकर देखना पड़ेगा कि वह 'मैं' क्या है और वहींसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण प्रारम्भ होता है। आप ऋषियोंको ढूँढ़ना चाहते हैं तो उसके लिए हिमालयमें जानेकी जरूरत नहीं है। गंगा-किनारे जानेकी भी जरूरत नहीं है। उसके लिए किसी मन्दिरमें भी जानेकी जरूरत नहीं है। आपके 'मैं'के पाससे ही सब देवता—सब ऋषि, नारायण, ब्रह्मा,

इन्द्र, शिव, सूर्य—सव प्रकट होते हैं और आपके 'मैं'के पाससे ही सब ऋषि पैदा होते हैं।

सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण शक्तियोंका खजाना कहाँ है? ऊपर है? नीचे है? दाहिने है? वायें है? नहीं-नहीं—आप अज्ञानमें भटक जायेंगे। सारी शक्तियोंका खजाना वहीं छिपा हुआ है। उसका दरवाजा वहीं है जहाँ आपका 'मैं' है। अब देखो भगवान्‌का वैभव! देवता लोग तो नहीं जानते।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

देवतागण और ऋषिगण भगवान्‌के प्रभव और प्रभावको नहीं जानते। प्रभव योग है और प्रभाव वैभव है। प्रभाव फैलता है और प्रभव—जहाँसे सबकी उत्पत्ति होती है—'प्रभवति यस्मात् इति प्रभवः।' ऋषिलोग जहाँसे पैदा होते हैं, उसको नहीं जान पाते। देवता लोग जहाँसे पैदा होते हैं, जब उसको ही नहीं जान पाते तव यह आत्मा जो परमात्मा है, इसको कैसे जान सकेंगे? **अहमादिर्हि भूतानां महर्षीणां च सर्वशः।** ये सारी ज्ञानेन्द्रियाँ और सारे देवता, सारा अध्यात्म—ऋषि है और सारा अधिदैव—देवता है और इनके द्वारा ये समग्र अधिभूत दिखाई पड़ते हैं।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः। (७.३०)

ये सव-के-सव परमात्माके स्वरूप हैं। सबका उपादान कारण मैं हूँ। सबका आदि मैं हूँ। हमारे अन्तरात्मामें बैठे हुए श्रीकृष्ण बोलते हैं।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। (१०.२०)

जन-जनमें विभूति—एक-एक प्राणी भगवान्‌का वैभव है, भगवान्‌की विभूति है। सबमें भगवान्‌को देखो। न राग होगा, न द्वेष होगा। न दुःख होगा, न शोक होगा, न भय होगा। यही

तो उपनिषद् बोलती हैं, इसीको जानो। देवता लोग नहीं जानते, ठीक है। किसी देवताके पास हाथ मत जोड़ो कि हमें बता दो। देवता नहीं बतायेगा। किसी ऋषिके पास हाथ मत जोड़ो। कौन बतायेगा? जो ऋषियोंका आदि है सो बतायेगा। जो देवताओंकी आदि है सो बतायेगा। और यदि उसको पहचान लोगे—

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (१०.३)

भगवान्‌को जानो यह योग है। अज और अनादि—जायमान नहीं—जिसके जन्मका किसीको अनुभव ही नहीं होता। थोड़ी-सी भूमिका दसवें अध्यायकी सुना रहे हैं। फिर हँसी-खेलकी बात भी सुना देंगे।

दुनियामें ऐसा कोई माईका लाल न पैदा हुआ, न है और न होगा कि वह बता दे कि मैं पहले-पहल कब पैदा हुआ? ज्ञानका जन्म भी पहले रहनेवाले ज्ञानसे ही मालूम पड़ता है। ज्ञानके अभावका अनुभव नहीं हो सकता। और मैं नहीं हूँ, यह अनुभव भी कभी किसीको नहीं हो सकता। यह नियम है दर्शनशास्त्रका कि किसीको यह अनुभव हो ही नहीं सकता कि मैं नहीं हूँ। क्योंकि जब मैं नहीं हूँ, यह अनुभव होगा तो वह अनुभव करनेवाला 'मैं' मौजूद रहेगा। विद्यमान रहेगा पहलेसे। मैं नहीं हूँ, यह एक दर्शन हो रहा है और दर्शन करनेवाला पहलेसे विद्यमान है। यह आत्मा अजन्मा है। यह कालमें प्रारम्भ नहीं होता, कालको प्रकाशित करता है। यह हमारा अनादि जो है, वह कल्पना नहीं है कि समझमें नहीं आया तो कह दिया अनादि है। विचारनेपर यह समझमें आ सकता है कि आत्माको आदि है ही नहीं, इसकी जायमानता है ही नहीं। तो परमात्मा समझो—कहाँ है? कौन है? यह योग है। और **वेत्ति लोकमहेश्वरम्** यह विभूति है। विभूति क्या है? जैसे मशीनको चलानेवाली बिजली है, वैसे।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। (१०.८)

भगवान् बोलते हैं—सबका आदि, जन्मदाता मैं हूँ। यह योग हो गया और **मत्तः सर्वं प्रवर्तते**—सबका सञ्चालक मैं हूँ—यह विभूति हो गयी। आप तारमें बिजलीको आँखसे नहीं देख सकते; यह योग है। लेकिन बल्बमें जब उसकी रोशनी आती है तब उसकी विभूति देखते हैं। पंखेको घुमाना बिजलीकी विभूति है। बल्बको जलाना यह बिजलीकी विभूति है। और बिजली क्या है ? छूनेसे जिसका करेण्ट लगता है वह बिजली है—नहीं वह भी उसकी विभूति है। जो इस सारे आकाशमें विद्युत्तत्त्व है, वह योग है। व्यापक बिजलीको देखो; यह विभूति है। लोकमहेश्वर सारी सृष्टिको नचानेवाला जो है—विधि हरि संभु नचावनहारे—ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको नचानेवाला वही है। **लोकमहेश्वरम्**—कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ये ग्रह, नक्षत्र, तारे, यह माया, यह प्रकृति जिसके नचाये नाच रही है, उसको देखो। यह उसका वैभव है कि वह सारी सृष्टिका सञ्चालन कर रहा है—**लोकमहेश्वरम्**—ईश्वर है वह। **कर्तुम् अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थः**—करे सो ठीक, न करे सो ठीक, बदल दे सो ठीक = सब जगह भगवान्‌का हाथ है।

दो बात ध्यानमें आनी चाहिए। सबके आदिमें अजन्मा परमात्मा ही स्थित है। वही सबका मूल मसाला है और वही सबका सञ्चालक है—ये दो बातें आपको तुरन्त प्राप्त हो जायेंगी। **असंमूढः स मर्त्येषु**—ज्ञान हो गया। **सर्वपापैः प्रमुच्यते**। सब पापोंसे मुक्ति हो गयी। तो, अज्ञान मिटा देना यह योग है और पापोंसे मुक्त कर देना यह विभूति है। जब आप सर्वत्र परमेश्वरका दर्शन करने लगेंगे—यह देखो श्याम, यह देखो श्याम। वृक्षमें भी वही है।

भागवतमें वृक्षोंके रोमाञ्चका वर्णन है। मधुक्षरणका वर्णन

है। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वृक्षोंसे मधुधारा बहने लगती है। लताएँ खिल उठती हैं। पृथिवीमें रोमाञ्च—दूबके रूपमें रोमाञ्च हो जाता है, तालाबोंमें कमल खिल जाते हैं, यह वैभव है। अग्नि शान्त हो जाती है। सूर्य, चन्द्रमा ठिठक जाते हैं। माया-शरीरमें रोमाञ्च, आँखोंमें आँसू, हृदयमें गोविन्द हैं। यह भगवान्की विभूति सृष्टिमें सर्वत्र काम करती है। आप जहाँ देखेंगे वहीं भगवान्का वैभव है।

यह पृथिवी दृढ़ क्यों है? फट क्यों नहीं जाती? यह पानी सबको कहाँसे तृप्ति देता है? ये सूर्य तथा चन्द्रमामें रोशनी कहाँसे आती है? यह वायु सबको प्राण कैसे दे रहा है? आकाश सबको कैसे धारण कर रहा है? देखो, यह भगवान्की झलक, सारी सृष्टिमें। यह स्त्री-पुरुषमें इतना प्रेम क्यों है? बालक इतने प्यारे क्यों लगते हैं? लोगोंमें सद्भाव कहाँसे आता है? इस जड़ शरीरमें चेतना कैसे काम करती है? ये परमात्माकी विभूति ही सारी सृष्टिमें भरी हुई है। और जहाँ इसको मनुष्यने पहचाना—

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।

भगवान्ने कहा—हमारी विभूति और हमारा योग—**एतां विभूतिं योगं च**—'च' बोलनेसे मालूम पड़ता है कि दो चीज है। **आत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन**—तो समाधिमें भी भगवान्, व्यवहारमें भी भगवान्, पूजा-घरमें भी भगवान् और फैक्टरीमें भी भगवान्, दुकानपर भी भगवान्, सड़कपर भी भगवान्—नानारूप जो दिखाई पड़ रहा है, उसमें भी भगवान्। यह विभूतियोगका अभिप्राय है।

●

प्रवचन—२

(११-११-८०)

उपनिषदोंमें वार-वार आता है—**य एवमुपासते य एवं वेद**—जो ऐसी उपासना करता है और जो ऐसा जानता है। दोनोंका फल एक होता है। क्योंकि उपासनामें मनकी प्रधानता रहती है और जाननेमें बुद्धिकी प्रधानता रहती है। आप जानते हैं—जिस वस्तुको आप अच्छी समझते हैं, उसको पानेकी इच्छा होती है। जिस वस्तुको वुरी समझते हैं उसको त्यागनेकी इच्छा होती है। पानेकी और त्यागनेकी इच्छा यह मनका काम है। और समझना कि क्या अच्छा क्या वुरा यह बुद्धिका धर्म है। इच्छाओंका उदय होता है समझदारीके अनुसार। परन्तु समझदारीमें दो विभाग हो जाते हैं। एक सुख-प्रधान विभाग और एक सत्य-प्रधान विभाग।

जहाँ हम सत्य और सुख दोनोंको अलग-अलग कर देते हैं, ब्रह्मचर्य सत्य है, परन्तु सुख तो भोगमें है, वहाँ हमारी बुद्धिके दो खण्ड हो जाते हैं। एक तो सत्यका पक्षपात करती है और दूसरी बुद्धि सुखकी ओर आकृष्ट करती है। सत्य तो ईमानदारीमें है लेकिन बेईमानीमें तो बहुत आमदनी है, उसमें सुख है। तो बुद्धिके दो खण्ड हो गये। एक सत्यपक्षपातिनी ईमानदारीकी बुद्धि और एक सुखपक्षपातिनी बेईमानीकी बुद्धि। उसमें हम स्वयं अपनेको किस बुद्धिके साथ जोड़ते हैं, किसके अनुसार जीवन चलता है। यदि सत्य और ईमानदारीके पक्षमें बुद्धि हो तो

कष्ट सहना अच्छा लगेगा परन्तु बेईमानी करना अच्छा नहीं लगेगा। और यदि तात्कालिक सुख भोगकी ओर बुद्धिकी प्रवृत्ति हो गयी तो कष्ट सहना अच्छा नहीं लगेगा। तात्कालिक सुख-भोग जिससे मिले वह काम करनेको इच्छा होगी।

अब यहाँ तो चर्चा है परमात्माके ज्ञानकी।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (गीता १०.३)

ये कहते हैं कि परमात्माको जानो। जो अज है सो परमात्मा है, जो अनादि है सो परमात्मा है। वैसे लोक-व्यवहारमें तो हम ईश्वरको भी अजन्मा मानते हैं और प्रकृतिको भी अजन्मा मानते हैं और जीवको भी अजन्मा मानते हैं। जो लोग विशेषण-विशेष्य भाव मानते हैं वे भी परमात्मा, प्रकृति और जीव इनको अजन्मा और अनादि ही मानते हैं। और जो लोग संयोग मानते हैं—वे भी मानते हैं कि प्रकृति स्वयं अनादि है और अजन्मा है। प्रकृति हमेशा थी, हमेशा है, हमेशा रहेगी और जीव भी कभी नहीं है, ऐसा नहीं, जीवका जन्म माने क्या, प्रकृतिसे पैदा हुआ जो शरीर उसको 'मैं' और 'मेरा' मान लेना। असलमें जीवका जन्म और कुछ नहीं है। इस देहमें जो मैं है और मेरापन है यही जीवका जन्म है। यदि मैं और मेरापन छूट जाय तो जीवका न जन्म है, न मरण है और प्रकृतिमें जो जन्म है, वह प्रकृतिमें विकार होता है। यों प्रकृतिमें बुद्धि, फिर बुद्धिमें अहंकार हुआ, फिर अहंकारसे तन्मात्राएँ पैदा हुईं। उनसे फिर पञ्चभूत बने। फिर पञ्च तन्मात्राओंके सात्त्विक अंशसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बनीं, राजस अंशसे पाँच कर्मेन्द्रियाँ बनीं; तामसांशसे पाँच भूत बने। ये पाँच-पाँचकी प्रक्रिया है—क्योंकि हमारे पास जाननेके जो औजार हैं वे

पाँच हैं—नाकसे गन्ध, जीभसे स्वाद, आँखसे रूप, त्वचासे स्पर्श और कानसे शब्द। हमारे पास सूक्ष्म वस्तुको जाननेके लिए, दृश्य वस्तुको पहचाननेके लिए जो करण हैं, जो औजार हैं, वे पाँच हैं और पाँच विषयोंको जानते हैं और उनमें पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ बनती हैं तथा पाँच प्रकारके कर्म होते है। आँख देखती है, पाँव चलते हैं—ज्यों-ज्यों पाँव चलेंगे त्यों-त्यों आँख देखेगी। ज्यों-ज्यों आँख देखेगी त्यों-त्यों पाँव चलेंगे। हाथ चीजको पकड़कर लायेगा और उसको हम हृदयसे लगा लेंगे। मुँहमें डाल लेंगे, नाकसे सूँघ-लेंगे, कर्मेन्द्रियाँ चपरासीकी तरह काम करती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ बताती रहती है। यह हमारे जीवनकी प्रणाली है। हमलोग दूसरों के बारेमें तो बहुत सोचते हैं। परन्तु अपने बारेमें सोचनेका मौका कम मिलता है। और असली बात यह है कि हम अपने बारेमें पहले ठीक-ठीक समझलें तो यह संसारमें जो बहुत सारी चीजें हमारे साथ जुड़ गयी हैं—मरनेका डर लग गया है—और छूटी हुई चीजोंके लिए शोक लग गया है—जो हमारे जीवनमें चीजें साथ चल रही हैं—उनके साथ मोह लग गया है। सबसे बड़ा लाभ इसमें यह होता है कि छूटी हुई चीजके लिए शोक नहीं रहेगा; और वर्तमानमें जो चीज अपने साथ जुड़ी हुई हैं उनको साथ ले चलनेका मोह नहीं रहेगा और मृत्युका जो जीवनमें भय है वह नहीं रहेगा। आप सोचिये वह जीवन कितना स्वच्छ, कितना सुन्दर, कितना सत्य, कितना शिव होगा, जिसमें मृत्युका भय न हो, वस्तुओंके छूटनेका मोह न हो। छूट जानेका शोक न हो—शोक, मोह और भयसे रहित जो जीवन होगा वह कितना उत्तम कोटिका जीवन होगा। उसको अपने कर्तव्य-पालनमें कहीं कोई अड़चन ही नहीं है। शोकमें तो आपका पाँव फिसल गया पीछे, मोहमें आपका पाँव गड़ गया और भयमें आपका पाँव आगे फिसल गया। आप जीवन-यात्रा कैसे करेंगे? इसलिए जीवनमें सच्चा

दृष्टिकोण प्राप्त होना चाहिए और उसके बाद आप निर्भय होकर निःशोक होकर, निर्मोह होकर—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः । (ईशोप० ७)

जीवन यापन कर सकते हैं। जब आपको परमात्माका दर्शन हो जाय माने संसारकी असलियतको, सच्चाईको आप जान जायँ तो आपका जीवन कितना मुक्त, कितना स्वतन्त्र होगा, इसकी कल्पना कीजिये। प्रकृतिमें होते हैं विकार, वे बदलते रहते हैं और जीव अपने साथ जोड़कर दुःखी-सुखी होता है और परमेश्वर, सर्वज्ञ, परम कृपालु स्वेच्छासे अपने आपको प्रकट करके लोगोंको ठीक रास्ता बताता है, ज्ञान देता है, सुख देता है, सच्चा जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा देता है। ईश्वरका जन्म कृपा-परवश है, जीवका जन्म अज्ञान-मूलक है और प्रकृतिका जन्म स्वाभाविक विकार है। यदि स्वाभाविक विकारसे जीव अपनेको अलग करले, अज्ञान मिटाकर तो दुनियाँमें जो हेर-फेर हो रहा है, उसका असर उसपर नहीं पड़ेगा। और यदि वह स्वयं अपनेको न जान सके तो सर्वज्ञ परमेश्वर, परम कृपालु अवतार ग्रहण करके जो मार्ग बनाते हैं, उस मार्गको समझे और उसपर चले—

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है कि अब तुमको और जाननेके लिए हम कहाँ भेजें, कि जाओ तुम ब्रह्मको जानो, आत्माको जानो, प्रकृतिको जानो, हम तुमको किसी दूसरेके पास नहीं भेज रहे हैं। तुम मुझे जानो। 'माम्' माने मुझे जानो। 'मां वेत्ति' जो मुझे जान लेता है। कितना बड़ा आधार मिल गया जाननेके लिए एक सहारा मिल गया। आओ कृष्णको जानें। कृष्ण कैसे हैं—तो कहते हैं कि, जो तुम मेरा जन्म देखते हो और मेरी आदि देखते हो—यह दोनों बात गलत है—न मेरा जन्म-मरण है—न मेरा आदि-

अन्त है—**यो मामजमनादिं च वेत्ति**—जन्म ग्रहण न करके बहुत रूपोंमें मालूम पड़ रहा है।

भगवान् कहते हैं—अपरा प्रकृति है—आठ प्रकारकी और परा प्रकृति है—एक प्रकारकी और मेरा जो यह रूप है उसमें न अपरा प्रकृति है न परा प्रकृति है। एक परमेश्वर है और सारे लोककी व्यवस्था कर रहा है। इसीको कल मैं सुना रहा था कि परमात्मा अजन्मा है, अनादि है—यह जानना तो योग है अर्थात् परमेश्वर ही सबका सञ्चालन कर रहा है। लोक-महेश्वर है—सबको जाहिर करता है, प्रकट करता है और सबको अप्रकट करता है, लय करता है और सबका पालन-पोषण करता है और सबका सञ्चालन करता है। वह ईश्वरोंका भी ईश्वर अर्थात् महेश्वर है। वह आपके साथ-साथ ही रहता है। यहाँतक कि इसके बिना आपकी जीभ बोल नहीं सकती।

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥ (भाग ४.९.६)

यदि परमेश्वर आपके हृदयमें बैठा हुआ न हो तो आपकी जीभ बोल नहीं सकती। आँख देख नहीं सकती। कान सुन नहीं सकता। केनोपनिषद्के प्रारम्भमें यही बात तो समझायी गयी है—

चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति। (१.१)

वह कौन देवता है जो हमारे मनको सोचनेकी शक्ति देता है? आँख और कानको देखने और सुननेकी शक्ति देता है? हमारी जीभको बोलनेकी शक्ति देता है? वह हमारी आँख-की-आँख है—हमारे कान-का-कान है—हमारो जीभ-की-जीभ है। वह हमारे मन-का-मन है, वह हमारे प्राणका प्राण है। यदि वह न हो तो हमारी

साँस ही न चले। और आश्चर्य तो यह है—वह एक ही शरीरमें नहीं है—सबके शरीरमें है और सबकी आँख, कान और सब इन्द्रियोंका सञ्चालन कर रहा है, नियमन कर रहा है—अन्तर्यामी है। वह प्रभु है। उसका न जन्म है, न मृत्यु है। जन्म जिसका होता है वह दृश्य होता है। पहले नहीं था, यह भी हमने देखा और अब पैदा हुआ, यह भी हमने देखा। तो वह तो हमारे सामने नहीं था और पैदा हो गया और उसका नहींपना भी मैंने देखा और उमका होना भी मैंने देखा—तो देखनेवाला अजन्मा होगा—दीखनेवाला अजन्मा नहीं होगा।

अब आओ, यह जो हमारा देखना—एक-एक आदमीका देखना और सब लोगोंका देखना—इसमें एक-एक आदमीका देखना जिससे होता है उसको जीव बोलते हैं और सब जीवोंका देखना जिससे होता है, उसको परमेश्वर बोलते हैं। वही लोकमहेश्वर है। सम्पूर्ण दृश्य सृष्टिका महान् परमेश्वर वही है। अब इसको जान लिया। **असंमूढः स मर्त्येषु**। दो बात बतायी। इसमें भी जीवनके लिए कितनी उपयोगी बात कही गयी है। एक तो आप कहीं संमूढ न हों और एक आपको पाप नहीं लगेगा। जीवनमें लोकके दुःखसे मुक्त किया, असंमूढ बनाकर और परलोकके दुःखसे मुक्त कर दिया, पापसे मुक्त करके। आप इस लोकमें दुःखी तब होते हैं, जब आपका कहीं मोह होता है, संमूढ होते हैं। इसके भी सूक्ष्म-रूपसे दो विभाग हैं। एक होता है मोह और एक होता है संमोह।

जैसे कोई राजा है, उसको आपने पहचाना नहीं—यह तो मोह हुआ, अज्ञान हुआ। लेकिन आपने यदि उसे चपरासी मान लिया तो राजाको राजाके रूपमें न मानना अज्ञान है और उसको चपरासी मान बैठना यह तो भ्रम है, संमोह है। चपरासी माननेसे पहले तो अज्ञान था, पर चपरासी माननेपर तो भ्रम हो गया।

अज्ञानका बच्चा है भ्रम। वेदान्तियोंकी भाषामें बोलें तो रस्सीको न पहचानना अज्ञान है और उसको साँप या माला या डण्डा या भूछिद्र--ऐसा कुछ मान बैठना, इसका नाम भ्रम है। भ्रम कार्य होता है और अज्ञान कारण होता है।

संसारमें हमलोगोंके जीवनमें जितना दुःख है, उसका एक ही कारण है—और वह कारण है—संमूढ हो जाना। संमूढ हो जाना माने अटक जाना। हम अपनी जगहसे टस-से-मस होनेको तैयार नहीं हैं। एकने कहा--कि आप जरा इस कुर्सीपरसे उठकर इसपर बैठ जायँ। हमने कहा तुम अपमान करते हो? हम तो इसी कुर्सीपर वैठे हैं और इसीपर वैठे रहेंगे। अब कुर्सीके साथ चिपक गये। अगर आपसे ज्यादा उस कुर्सीकी और किसीको आवश्यकता हो—अपनेसे कोई श्रेष्ठ पुरुष हो, कोई बीमार हो तो विवेकपूर्वक उस कुर्सीको छोड़ देना चाहिए। इसमें आपको सुख होगा। एक रोगीके लिए, असमर्थके लिए कुर्सी छोड़ेंगे तव भी आपको सुख होगा और एक वड़ेका आदर करनेके लिए कुर्सी छोड़ेंगे तव भी आपको सुख होगा और यदि आप कुर्सी छोड़ना पसन्द न करेंगे तो कुर्सीपर तो आप भले ही बैठे रहेंगे लेकिन आपके मनमें कभी-न-कभी उद्वेगकी प्राप्ति होगी। पश्चात्ताप होगा कि हमने एक असमर्थकी सेवा नहीं की या हमने एक वड़ेका आदर नहीं किया। यह जो हम संसारकी स्थितिमें संमूढ हो रहे हैं--अटक गये हैं—हम किसी भी परिवर्तनको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। परिवर्तन तो होता ही रहता है। पहली वात यह है कि आपको परमात्माका स्वरूप समझना होगा। यहाँ भी वही है--वहाँ भी वही है।

एक वार बहुत बड़ी सभा हुई थी। उसमें वहुत-से साधु-आचार्य जो चाँदी-सोनेके सिंहासनपर वैठते हैं और बड़े-वड़े छत्र

चँवर लगाते हैं, वे कई इकट्ठे हुए थे। एक महात्मा आये और सामने वालूपर आकर वैठे। अब जितनी भीड़ छत्र-चँवरवालोंपर लगी हुई थी उससे ज्यादा भीड़ वालूपर वैठनेवालेके पास चली गयी। भीड़का मुँह वालूपर वैठनेवालेकी तरफ हो गया। महात्मापन छत्र-चँवर धारणकर सिंहासनपर बैठनेमें है कि वालू-पर वैठनेपर है! छत्र-चँवरमें भी वही परमात्मा है—हम उसका तिरस्कार नहीं करते हैं, आदर करते हैं। पर वालूपर वैठनेवाले भी वही हैं–यह बात भूलनी नहीं चाहिए। वह धरती भी भगवान्का बनाया हुआ सिंहासन है। सवकी माँ है, सबकी गोद है। इसलिए भगवान् चाहे यहाँ रखें या वहाँ रखें। मालिक अपने मुनीमको इस दुकानमें रखे कि उस दुकानमें रखे; इस दुकानका माल उस दुकानमें भेजनेको कह दे, यह तो मालिककी मौज है—उसमें मुनीमको दुःखी नहीं होना चाहिए। हम तो यहीं रहेंगे, वहाँ नहीं आयेंगे—यह मुनीमका काम नहीं है। मुनीम मालिकके हुकुमको प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं करता तथा इनकार करता है, वह संमूढ़ हो गया।

यदि आप परमात्माको पहचानेंगे तो उसके वाद आपको कहीं भी सम्मोह नहीं होगा, न भ्रम होगा और न अज्ञान होगा। आप देखेंगे कि सव मालिकका खेल है और उसके अनुसार सारी सृष्टि चल रही है और हमको भी उसीके अनुसार चलना है। यह न छूट जाय—इसका दुःख अपने जीवनमें होता है और यह न आजाय, यह न आजाय इसका दुःख भी अपने जीवनमें होता है। दुःखसे मुक्तिका उपाय यही है कि हमारे जीवनमें सम्मोह न रहे, भ्रम न रहे। यह ईश्वरके सिवाय कोई दूसरा है, मैं कुछ दूसरा हूँ। यह सब सम्मोह अपने जीवनमें-से तब मिट जाता है।

जब हम परमेश्वरको दोनों-रूपोंमें पहचान लेते हैं। दोनों रूपों-

में—समाधिके रूपमें भी और व्यवहारके रूपमें भी वही है। जहाँ हम दोनों रूपोंमें परमात्माको पहचानेंगे वहाँ हमारे जीवनमें सम्मोह नहीं रहेगा। अब रही बात पाप-पुण्यकी—**सर्वपापै प्रमुच्यते**। पहले मैंने बताया कि योग तो है परमात्माके अनादि व अजन्मारूपको मानना। और विभूति क्या है? वैभव क्या है? उसके लोक महेश्वररूपको पहचानना ही विभूति है। हमारी आँख देखती है, हमारा हाथ हिलता है, पत्ते हिलते हैं, पर बिना उसकी सत्ताके कोई पत्ता हिल नहीं सकता। उसीमें यह हवा चलती है और उसीसे यह सूर्य, चन्द्रमा अपने रास्तेपर चलते हैं। ये सब उसी परमेश्वरकी ओरसे हो रहा है। इसीसे भगवान्ने कर्मयोगका जब वर्णन किया तो यह कहा कि मैंने कर्मयोगकी पहली शिक्षा सूर्यको दी।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्। (४.१)

कर्मयोगी कौन है? कर्मयोगी सूर्य है। निरन्तर चलता रहता है। सूर्यके जीवनमें विश्राम नहीं है। एक क्षणके लिए भी विश्राम नहीं है। रुकता ही नहीं है और प्रकाश फेंकना कभी बन्द नहीं करता। उसका ताप उसका प्रकाश निरन्तर फैलता रहता है। प्रकाश देना उसका काम है और विश्राम उसके जीवनमें है नहीं। यदि सूर्य कभी समाधि लगाले तो क्या होगा? सूर्य समाधिमें बैठ जावे, चलना बन्द कर दे, प्रकाश फेंकना बन्द कर दे तो क्या होगा? सारा विश्व अन्धकारमय हो जायेगा।

कर्मयोगी पहला गुरु भगवान्। भगवान् भी समाधि नहीं लगाते। भगवान् भी योगमें नहीं बैठते। हर समय सृष्टि, स्थिति, प्रलय। परमात्मा कभी बैठा-ठाला नहीं रहता। हर समय कुछ-न-कुछ करता रहता है। सबको सुलाता है। जैसे माँ बच्चेको सुलाती है और स्वयं उसको दूध पिलाती है और जाग-जागकर

उसकी देखभाल करती है, वैसे परमात्मा निरन्तर जागता है, कभी सोनेका नाम नहीं लेता। समाधि लगानेका नाम नहीं लेता। कर्मयोगका सबसे बड़ा आदर्श परमात्मा हुआ और दूसरा नाम सूर्य। यह लोक-महेश्वर है, इसी सूर्यका वेदमें वर्णन है—

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।

(ऋग्वेद ५.५१.१५)

जैसे सूर्य और चन्द्रमा कल्याणमय मार्गपर सदा चलते रहते हैं—वैसे हम भी कल्याणमय मार्गपर सदा चलते रहें—हनुमान्-जीकी तरह बोल रहे हैं—'राम काज कीन्हें विना मोहि कहाँ विश्राम।' इस तरहसे लोक-महेश्वर प्रभुको जानो और फिर लोक व्यवहारमें सर्वत्र प्रभुका दर्शन करो। कर्मकाण्डी लोगोंने कर्मके फलको परलोकमें डाल दिया। यह बात गीताको पसन्द नहीं। अर्जुनने कहा—

नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम। (१.४४)

अरे हम ऐसा पाप करके मरेंगे तो हमेशा हमें नरकमें रहना पड़ेगा। भगवान् बोले, यह तो पुष्पिता वाणी है—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥ (२.४२)

आओ, हम तुमको ऐसी युक्ति बताते हैं कि यह पाप-पुण्यका चक्कर यहीं छूट जावेगा। गीता या उपनिषद् कोई पुरोहित-विद्या या पन्थाई लोगोंकी विद्या नहीं है। गीता कहती है—आओ, हम तुम्हें ऐसी बात सुनाते हैं कि इसी जीवनमें पाप और पुण्य दोनोंसे छूट जाओ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत-दुष्कृते। (२.५०)

जो बुद्धियोगी पुरुष होता है वह इसी जीवनमें, इसी लोकमें, यहीं सुकृत और दुष्कृत दोनोंको छोड़ देता है। दोनोंसे मुक्त हो जाता है। आप पुण्य करके स्वर्गमें जावेंगे और वहाँ सुख पावेंगे, यह बात नहीं है। वह तो एक वासना बनती है। अपनी वासना स्वर्ग बनाती है। वहाँ क्या मिलेगा ? वहाँ घूमनेके लिए नन्दनवन मिलेगा, चढ़नेके लिए विमान मिलेगा, वहाँ पीनेके लिए अमृत मिलेगा, वहाँ अप्सराएँ मिलेंगी, इस तरहकी वासना अपने चित्तमें बनायी गयी—उसका साक्षात्कार होता है, हम उसको काटते नहीं हैं—परन्तु यदि पाप और पुण्य दोनोंसे छूटना हो तो जरा बुद्धिमानीसे काम कीजिये। बुद्धिमत्ता चाहिए जीवनमें—**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत-दुष्कृते।** आप दुनियामें कहीं अटकिये मत। अटकेंगे नहीं तो भटकना भी नहीं पड़ेगा।

सर्वपापैः प्रमुच्यते। (१०.३)

सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जायेंगे। यहाँ पाप शब्दका अर्थ पुण्य भी है। एक सज्जन आये थे, बोले—नामका उच्चारण करेंगे तो हम भले ही अजामिलकी तरह हों, हमें मुक्ति मिल जायेगी। अजामिलने अपने बेटेको भगवान्‌का नाम लेकर पुकारा और मुक्त हो गया। भागवतमें तो ऐसा नहीं है, उसमें तो ऐसा है कि उसने अपने बेटेका नाम लिया—भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌के पार्षद आगये और उन्होंने अजामिलको यमराजके दूतोंके पाशसे छुड़ा दिया। उसके बाद अजामिल हरिद्वारमें गंगातटपर जीवित रहकर बहुत दिनोंतक साधन-भजन करता रहा, उसके बाद उसको भगवान्‌का धाम मिला—तुरन्त मुक्ति मिल गयी ऐसा तो नहीं है।

असलमें मनुष्यके जीवनमें जो पाप होता है उससे छूटनेके तो अनेक उपाय होते हैं, लेकिन समूचे संसारके बन्धनसे छूटनेके

लिए परमात्माके स्वरूपका ज्ञान अपेक्षित होता है। मैंने उनसे पूछा कि ऐसा कोई श्लोक बताओ कि जिसमें यह लिखा हो कि नाम लेनेसे पुण्यका नाश हो जाता है। पुण्य बना रहेगा तो पुण्यका फल भोगनेके लिए कहीं-न-कहीं जाना पड़ेगा। चाहे इस सृष्टिमें आओ, चाहे दूसरी सृष्टिमें जाओ। पुण्यका फल तो भोगना ही पड़ेगा। लेकिन बुद्धियोग वह है जो केवल पापसे ही नहीं, पुण्यके बन्धनसे भी छुड़ा देता है और जब पाप-पुण्य दोनों छूट जाता है तब मनुष्यको वास्तविक सच्ची मुक्ति होती है।

पाप क्या है? यह आदमीकी बुद्धि नहीं सोच पाती। भिन्न-भिन्न देशोंमें पाप-पुण्य अलग-अलग हैं—रसियाका पाप-पुण्य व चाइनाका पाप-पुण्य और अमेरिकाका पाप-पुण्य, हमारे भारतवर्ष-का पाप-पुण्य, हिन्दूका पाप-पुण्य, मुसलमानका पाप-पुण्य, वैष्णवका पाप-पुण्य और शैवका पाप-पुण्य अलग-अलग हैं। आश्चर्य होगा आपको कि गुजरातमें ऐसे वैष्णव हैं—जो हम लोगोंकी तरह कपड़ा सीओ नहीं बोलते, क्योंकि उसमें शिवका नाम आजावेगा।

शिवः काशी शिवः काशी काशी काशी शिवः शिवः।

हम तो शिव कहते हैं तो हमारे पाप मिट जाते हैं और वे अपने मुँहमें शिव नाम आने ही नहीं देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पाप-पुण्यकी व्याख्या जो है वह सबकी जुदा-जुदा है और यह व्याख्या बुद्धिसे नहीं होती है—असलमें अनुशासनसे ज्ञात होती है। जिसके गुरु, जिसके सम्प्रदाय, जिस पन्थवाले, जिसके दिमागमें जो पाप-पुण्य भर देते हैं—वह उसीको मानने लगता है। नहीं तो, मूर्ति तोड़नेमें या नमाजके वक्त जाकर बाजा बजानेमें कौन-सा पाप-पुण्य है? यह पन्थाई लोगोंने आफत-बिपत बनायी है और यही पाप है। जो बुद्धिमान् पुरुष होता है वह इसी जीवनमें, इसी लोकमें—सब पाप और पुण्यकी कल्पनासे मुक्त हो जाता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे—इह—इसका माने है, इसी जीवनमें—अमृत इह भवति। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहता है—

ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति। (३.७)

यहीं अमृतत्वकी प्राप्ति हो जाती है। आपके दिमागमें जो बिना सोचे-विचारे, कहीं देखकर, कहीं सुनकर, किसीके कहनेसे जो बातें भर गयी हैं—उनसे छूटनेकी विद्या है। वह विद्या यह है कि आप परमात्माका वैभव देखिये। जब आपको सब जगह परमात्माका हाथ दिखेगा तो किसीके प्रति पापवृत्ति आपकी नहीं होगी। किसीके प्रति पुण्यवृत्ति नहीं होगी। सबके भीतर करानेवाला कौन है, वहाँतक अपनी नजर जाने दो। 'सर्वलोकमहेश्वरम्' परमेश्वरको पहचानो।

पाप शब्दका अर्थ संस्कृतमें होता है—जिससे रक्षा नहीं है, जिसमें त्राण नहीं है। पा माने रक्षा। पा रक्षणे धातु है। पाति इति पतिः—जो पत्नीकी रक्षा करे उसका नाम पति। पाति इति पिता। जो कन्याकी, पुत्रकी रक्षा करे उसका नाम पिता—उसी धातुका है पाप और उससे अप माने अपगत जिसमें 'प' प्रत्यय होता है उसका अर्थ यह है कि जिसमें रक्षा नहीं है। पाप करना माने अपनेको अरक्षित बना देना। पता नहीं कब कहाँ चले जायेंगे? पता नहीं, कब क्या कर बैठेंगे? पता नहीं, कब क्या बोल बैठेंगे। पता नहीं, कब क्या सोच बैठेंगे? तब आपका जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा। लेकिन यदि आप सब जगह परमेश्वरका प्रत्यक्ष हाथ देखें, वही नचा रहा है, 'उरप्रेरक रघुवंशविभूषण'—अपने हृदयमें रघुवंशविभूषण प्रेरक है; यदि आप इस बातको देखेंगे तो पापोंसे छूट जायेंगे।

अब कहते हैं—भगवान् हमारे जीवनमें क्या क्या देते हैं—

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥(१०.४.५)

इसको जानो, भगवान् क्या देते हैं? बुद्धि, वैसे भगवान्ने विष भी दिया है और अमृत भी दिया है। यह भगवान्का दान है। यदि संसारमें विष न हो तो अमृतका कोई महत्त्व नहीं। परन्तु जिसको हम विष कहते हैं वह भी तो अनेक रोगोंकी औषध है। वह तो रत्न है। विष तो चतुर्दश रत्नमें-से एक रत्न है। हमलोग उसकी उपयोगिताको कभी समझते नहीं हैं। गाय भी एक रत्न है, घोड़ा भी एक रत्न है, हाथी भी एक रत्न है—ये वृक्ष भी रत्न हैं एक-एक वृक्ष रत्न हैं। इससे जो हवा निकलती है वह रत्न है। उसके पत्ते रत्न हैं, फूल रत्न हैं—इनकी जड़ रत्न है। भगवान्ने कल्पवृक्षके रूपमें पहले रत्न दिया था।

भगवान्का दिया हुआ विष भी रत्न है और अमृत भी रत्न है। इसमें हीरे-मोती-लक्ष्मी भी रत्न हैं, वैद्य भी रत्न हैं, आयुर्वेद भी रत्न है, ओषधि भी रत्न हैं—भगवान्ने बड़े-वड़े रत्न दिये हैं। परन्तु मनुष्यके शरीरके भीतर जो सबसे वढ़िया भगवान्ने रत्न दिया वह है **बुद्धिः, ज्ञानम्, असंमोहः**। ये तीन आत्मरत्न हैं। पहले तो वुद्धि दी। उसमें ज्ञान सच्चा होना चाहिए। ज्ञानका जो आधार है वह वुद्धि है।

आपको एक दीपक प्राप्त है। आप उसे केरासीनका तेल डालकर जलाते हैं—तिलका तेल अथवा कड़वा तेल—या उसमें घी डालकर जलाते हैं। आपका स्नेह मिट्टीके तेल जैसा स्नेह है—या तिलके तेल जैसा स्नेह है या घृत जैसा स्नेह है। उसमें कहीं विजलीका कनेक्शन कर लिया—खूब प्रकाश हो गया। बुद्धि दी है भगवान्ने—पात्र—और उसमें जो ज्ञान है वह प्रमाणजन्य

है। ऐसे सुना-सुनाया, देखा-दिखाया, भेड़िया-चाल ज्ञान नहीं होना चाहिए। सत्यका यथार्थ ज्ञान आना चाहिए। बुद्धि वह है जिसमें यथार्थका ज्ञान होता है।

बुद्धि भी भगवान्‌ने दी और उसमें यथार्थका ज्ञान भी भगवान्‌ने दिया और उसका एक फल दिया—असंमोहः। आप कहीं भ्रान्त नहीं होंगे। भूलेंगे नहीं। ठीक-ठीक रास्ते पर चलेंगे। बुद्धि जिसमें ज्ञान भी होता है और भ्रान्ति भी होती है। बुद्धिमें भ्रम भी होता है और ज्ञान भी होता है। यथार्थ ज्ञान और भ्रम दोनों बुद्धिमें होते हैं। आप भ्रमको निकाल दीजिये और ज्ञानको रखिये और इसका फल आपके जीवनमें क्या होगा—

असंमोहः असंमूढः स मर्त्येषु।

आपका कहीं संमोह नहीं होगा। ये तीन बात आपकी आत्मामें भगवान्‌ने दी है। आपको बुद्धि मिली है कि नहीं ? उसमें ज्ञान मिला है कि नहीं ? और मोह-त्यागकी शक्ति आपमें मिली है कि नहीं ? बड़ा मोह हो किसीसे—इतिहासमें तो बहुत आता है। राजाका एक स्त्रीसे बहुत मोह था—राजाको मालूम पड़ा कि उस स्त्रीको हमारे शत्रुने हमें मारनेके लिए भेजा है। तुरन्त मोह कट गया कि नहीं कट गया ! बहुत बढ़िया भोजन आया। बढ़िया थाल, बढ़िया बरतन, बढ़िया भोजन बना हुआ—देखनेमें आँखको प्यारा, सुगन्ध बहुत अच्छी—जीभको बहुत प्यारा ! परन्तु शङ्का हो गयी कि सम्भव है हमारे शत्रुने इसमें जहर मिला दिया हो। आप भोजनका संमोह छोड़ देंगे। ये जो दुनिया आपको प्यारी-प्यारी लगती है। इसमें बड़ा संमोह है। यह स्त्री-पुरुषसे भी प्यारी है। यह भोजनसे भी प्यारी है। आपको जो चीज बहुत पसन्द है, उससे भी प्यारी है। लेकिन आपको यदि यह ज्ञान हो जाय कि इसमें जहर मिला हुआ है, तो ?

उत्तर प्रदेशमें एक राजा थे—उनके यहाँ बहुत बढ़िया भोजन

बनता था। वे जब भोजन करते थे तब पहले डॉक्टर परीक्षा करता था कि उसमें कोई विष नहीं है न ! और यही नहीं कि वह परीक्षा करके छोड़ दे—डॉक्टरको भी उसी भोजनमें-से साथ बैठकर भोजन करना पड़ता था। डॉक्टरपर भी विश्वास नहीं था। बुद्धि वह होनी चाहिए जिसमें सत्यका ज्ञान हो। सत्यका ज्ञान वह होना चाहिए कि ज्ञानके विपरीत जो हो उसे त्याग देनेका सामर्थ्य हो और ये तीनों बात भगवान्‌ने आपको जन्मसे दे रखी है। बुद्धि भी दिया है, ज्ञान भी दिया है और ज्ञानके विरुद्ध जो है उसे त्यागनेका सामर्थ्य भी दिया है। यह ज्ञान हमारे जीवनमें प्रकट कैसे हो ? तो आपके अन्तःकरणमें भी भगवान्‌ने **क्षमा सत्यं दमः शमः**—यह चार सम्पदा डाली है। यह भगवान्‌का दिया हुआ रत्न है।

क्षमा—आपको यदि अपने लक्ष्यकी ओर चलना है तो क्षमा करते हुए नहीं चलेंगे, सबको दण्ड देते हुए चलेंगे तो दण्ड देनेमें ही रह जायेंगे, आप अपनी जगह पहुँचेंगे ही नहीं। स्टेशनपर गये कहीं जानेके लिए—पहले क्यू लगानेमें ही लड़ाई हो गयी। पुलिसने पकड़ लिया। टिकिट लेनेमें बाबूसे ही लड़ाई हो गयी कि हमको पहले क्यों नहीं देते हो ! ट्रेनपर बैठकर यात्रियोंसे लड़ाई कर बैठे ! क्षमा करते चलो। क्षमता जो जीवनमें आती है। क्षम धातु एक होती है क्षमा करनेके अर्थमें और एक क्षम धातु होती है क्षमताके अर्थमें। इनके अन्दर यह काम करनेकी क्षमता है; क्षमता माने सामर्थ्य। जो समर्थ होता है वही क्षमा करता है। कमजोर आदमी, निर्बल आदमी क्षमा नहीं कर सकता। भगवान्‌ने आपके अन्दर क्षमा करनेकी शक्ति डाली है। जने-जनेसे लड़ते मत चलिये।

एक ठाकुर साहबके यहाँ देखा—कोई आदमी आया एक चीज उठाकर ले गया। उन्होंने कुछ नहीं कहा। पीछे जब मैनेजर

आया तब उन्होंने कहा वह चीज कहाँ है ? पता लगाओ। हमने कहा तुमने तो देखा ही है—वह चीज कहाँ गयी। बोले यह हमारा काम नहीं है। हमने देखा है; पर यह मैनेजरका काम है कि पता लगावे कि वह चीज कहाँ गयी ? हम अपने कामकी जानकारी रखते हैं पर उसको अपनी ड्यूटीपर चूकना नहीं चाहिए। यदि तुम हर अपराधीको दण्ड दोगे—हनुमान्‌जीने सीताजीसे कहा कि मैं उन राक्षस-राक्षसियोंको दण्ड दूँगा। रावणके मर जानेके बाद जब लङ्कापर विजय हो गयी तो हनुमान्‌जी गये। सीताजीसे कहा कि मैं इन अपराधियोंको दण्ड दूँगा। सीताजीने कहा कि हनुमान्‌जी किसको दण्ड देंगे ? क्या मैं अपराधिनी नहीं हूँ ? जब रामचन्द्र मृगके पीछे-पीछे दौड़कर गये तो मैंने ही तो भेजा था—क्या मेरा उसमें अपराध नहीं था ? जब लक्ष्मणजी उनकी मददके लिए नहीं जा रहे थे तब मैंने उनको जो दुर्वचन कहे—उसमें क्या मेरा अपराध नहीं था ? रावणके आनेपर मैंने लक्ष्मण-रेखा भङ्ग करके बाहर जाकरके भिक्षा दी, उसमें क्या अपराध नहीं था ? ऐसा संसारमें कौन है, जिससे अपराध नहीं होता है—छाती ठोंककर कहे।

ईसाने कहा—जिसने कभी चोरी न की हो, जिसने कभी व्यभिचार न किया हो वह इस चोर और व्यभिचारीको दण्ड दे।

क्षमा ईश्वरकी दी हुई सम्पदा है हमारे अन्तःकरणके लिए। उसका सदुपयोग करना चाहिए। **क्षमा सत्यं दमः शमः**—सत्यके अनुसार जीवन व्यतीत करना, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना, अपने मनको शान्त रखना, हमारे अन्तःकरणके लिए क्षमा। सत्य आत्मामें तीन चीज बुद्धि, ज्ञान और असंमोह और अन्तःकरणमें चार वस्तु **क्षमा सत्यं दमः शमः। सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च**—यह हमारे व्यवहारके लिए भगवान्‌ने छह पदार्थ दिये हैं।

प्रवचन—३

(१२-१०-८०)

भगवान् श्रीकृष्णने गीताके दसवें अध्यायमें एक विलक्षण वस्तुका वर्णन किया है। उनका कहना है कि मैं समाधिमें भी हूँ और विक्षेपमें भी मैं हूँ। परमार्थ भी मैं, व्यवहार भी मैं। जब यह बात मनुष्यकी बुद्धिमें ठीक-ठीक बैठ जाय कि महाप्रलय भी वही—महासृष्टि भी वही, यदि सर्वत्र भगवान्‌की पहचान हो जाय, तो आदमी चाहे समाधिमें रहे, चाहे व्यापार करे, दोनों जगह उसको भगवान्‌के दर्शन होते हैं। इसीको कहते हैं, योग और विभूति—

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन। (१०.१८)

यहाँ 'च' होनेसे दोनों अलग-अलग हो गया। भगवान्‌का एक योग है और एक विभूति है। योग क्या है? **बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः**—ये भगवान्‌के योग हैं और **क्षमा सत्यं दमः शमः**—ये विभूति हैं।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन—भूयः कथय।

भगवान्‌ने दो बात बतायी है—योग और विभूति। भगवान्‌ने स्वयं कहा—

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः। इसका अर्थ है व्यवहार और परमार्थ दोनोंमें आप भगवान्‌को देखिये। तत्त्व भी वही हैं और तत्त्वका विस्तार भी वही हैं। श्रीमद्भागवतमें इसकी

भी व्याख्या दी हुई है। पहले तो दृष्टान्त हैं—जैसे उपनिषद्में हैं। जैसे एक सोनेका पत्र है और उसपर चाहे ठप्पेसे ठोककर चित्र उभार दिये जायँ—चाहे साँचेसे ही सोनेके पत्रपर एक मकान बनाया जाय। उस मकानमें एक ओर शयनगृह है, भोजनगृह है। भोजनगृहमें मेज है तो उसमें भोजनकी सामग्री भी रखी हुई है। एक ओर बाथरूम भी है। उस मकानमें कहीं मच्छर भी उड़ रहे हैं। कहीं पेड़-पौधे भी दिख रहे हैं। है सब-का-सब सोना। सोना एक तत्त्व है और इसमें जो भिन्न-भिन्न प्रकारके चित्र हैं, मकान है, मन्दिर है, देवता है, पशु है, पक्षी है, वृक्ष है, लता है, स्वच्छ है, गन्दा है ये सब स्वयंकी विभूति है, माने स्वर्णमें ऐसी योग्यता है कि उसमें आप कोई भी चित्र बना लो। एक है स्वर्णतत्त्व और एक है उसकी योग्यताका प्रदर्शन। परन्तु कुलका कुल सोना है। भागवतमें ऐसे कहा—

न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम्। (१०.८७.२६)

यह वेद-स्तुति सारे श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तोंका निचोड़ है। सोनेके बने हुए जो जेवर हैं, सिल्ली है, उसका चूरा है, उसमें चित्र हैं, उसको गला दिया—द्रव हो गया। ये सब स्वर्णका विकार है। परन्तु क्या कोई सोनेका जानकार उन विकारोंको छोड़ देता है—**न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य।** सोनेके विकारको कोई फेंकता नहीं है। 'तदात्मतया' क्योंकि सोनेका विकार भी सोना ही होता है। द्रव भी सोना, चूर भी सोना, सिल्ली भी सोना, जेवर भी सोना। जिसको स्वर्णका मूल्यांकन है वह स्वर्णकी बनी हुई किसी भी वस्तुको छोड़ेगा नहीं।

स्वयं भगवान्‌ने अपने आपमें इस जगत्‌को बनाया और इसके एक-एक कण-कणमें प्रविष्ट हैं और भगवान् स्वयं इसको अपने

आत्मरूपसे अनुभव करते हैं। इसलिए कौन ऐसा स्वर्णका जानकार है, जो स्वर्णकी आकृतियों को छोड़ दे, विकृतियोंको छोड़ दे। इसी प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व भगवान्में, भगवान्के द्वारा ही चित्रित है। भगवान् परदा है और उनपर यह सारा-का-सारा चित्र दिखाई पड़ रहा है। भगवान् स्वर्ण हैं और उनमें ये सारी-की-सारी आकृतियाँ दिखाई पड़ रही हैं। योग माने सोना और विभूति माने उसमें बने हुए चित्र—दोनोंको जो जान लेता है, **सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।** उसको अविकम्प योगकी प्राप्ति होती है।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥ (१०.७)

कोई संशय मत करो। अविकम्प योग माने ऐसा योग—जो कभी टलेगा नहीं—कभी चलेगा नहीं—कभी छूटेगा नहीं। मृत्युमें भी आपको भगवान्का अविकम्प योग बना रहेगा, क्योंकि—

मृत्युः सर्वहरश्चाहम्। (१०.३४)

मृत्युके रूपमें भी वही है—

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन। (९.१९)

यह तो आपके लिए मृत्युका नाम लिया। मृत्यु ही नहीं, बुढ़ापा भी वही है, जवानी भी वही है, बचपन भी वही है। ब्रह्मचर्य भी वही है, विवाह भी वही है। वानप्रस्थ भी वही है—संन्यास भी वही है। घर-गृहस्थीमें भी वही है—वनमें भी वही है। पर्वतमें भी वही है। **सर्व सर्वगत सर्व उरालय**—गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा। भगवान् सब हैं, सबमें हैं और सबके हृदयमें निवास करते हैं। इसीसे श्रीमद्भागवतमें इसकी बहुत उत्तम व्याख्या की हुई है। गीताके अठारह अध्याय हैं और भागवतके १८ हजार श्लोक हैं। एक-एक अध्यायकी व्याख्यामें एक-एक हजार श्लोक समझ लें।

भागवतमें भी कहा गया है—

बृहदुपलब्धमेतदवयत्यवशेषतया यत
उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात् ।

'एतद् उपलब्धम्'—यह जो जगत् हमें मालूम पड़ रहा है, ये वृक्ष, ये लता, ये स्त्री, ये पुरुष, ये दाढ़ीवाले, ये चोटीवाले—चाहे कोई भी राष्ट्रीयता हो, कोई भी जातीयता हो, कोई भी साम्प्रदायिकता हो—यह सब कहाँ है ?—**एतद् उपलब्धम्**—जो कुछ हमें अपने इन्द्रियोंके द्वारा, मनके द्वारा, बुद्धिके द्वारा उपलब्ध होता है, ज्ञान होता है—मालूम पड़ता है वह सब-का-सब परब्रह्म परमात्मा है—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म । (छान्दोग्य ३.१४.१)
ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं । (मुण्डक २.२.११)
आत्मैवेदं सर्वम् । (छान्दोग्य ७.५.२)

सर्वके रूपमें परमात्माका ही अनुभव करें। अवशेषतया क्योंकि जब नाम-रूप मिट जाता है तब भी वही शेष रह जाता है। उसीमें-से इसका उदय हुआ है। उसीमें अस्तमय हुआ है। जैसे मिट्टीसे बने हुए बरतन—मिट्टीका डला, मिट्टीका चूरा और पानीमें मिली हुई मिट्टी सब मिट्टी ही है। ये उपनिषदोंमें इस तरहके उदाहरण हैं। मिट्टीके उदाहरण हैं, जेवरके उदाहरण हैं, लोहेके उदाहरण हैं, वस्त्रके उदाहरण हैं, मकड़ीके जालेका उदाहरण है। यह सम्पूर्ण विश्वसृष्टि परमात्माका स्वरूप ही है। **विकृते मृदिवाविकृतात् ।**

स्वयं परमात्मा निर्विकार है और जैसे मिट्टीमें बहुत-से पदार्थ बनते हैं—बहुत-से खिलौने बनते हैं, वैसे यह सब-के-सब परमात्मामें ही बने हुए खिलौने हैं और परमात्मामें कोई विकार नहीं है। इस ज्ञानका फल अद्भुत बताया है।

यहाँ भागवतमें 'अत ऋषयो दधुः' कहा गया है। यह जानना चाहिए कि जो ऋषि हैं, जिसकी आँखें खुली हैं—जो खुली आँखोंसे परमात्माको देख सकता है, वह अपने वचन और आचरण दोनोंको परमात्मामें रख देता है। हम जो कुछ बोलते हैं सो परमात्मा, हम जो कुछ करते हैं सो परमात्मा है। इसका एक और दृष्टान्त दिया—

कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्।

आप पाँव रखेंगे तो धरतीपर रखेंगे। ऐसे आप कुछ बोलेंगे तो भगवान्‌में बोलेंगे—आप कुछ करेंगे तो भगवान्‌में करेंगे। अब वह महात्मा जीवन्मुक्त हो गया। न कहीं उसका राग रहा, न कहीं उसका द्वेष रहा। उसके हृदयमें समता आगयी। यही जो परमात्मा है वह आपकी आत्माके रूपमें बैठा हुआ है, यह योग हो गया और वही आपकी बुद्धिके रूपमें आया, यह उसका वैभव हो गया, विभूति हो गयी। आप केवल आत्माके रूपमें ही परमात्माको मत देखिये। उसका जो वैभव आपकी आँखोंके सामने आ रहा है, उसे देखिये। मन भी भगवान्‌का वैभव है—**इन्द्रियाणां मनश्चास्मि।** इन्द्रियोंमें मैं मन हूँ। पृथवीमें सुगन्ध हूँ। जलमें रस हूँ। तेजमें रूप हूँ। आप अपने जीवनमें परमात्माका दर्शन अपने शरीरमें ही करें।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुखं भवो भावो भयं चाभयमेव च॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥

सब भगवान् ही उच्छ्वसित हो रहे हैं—जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठती है तो तरङ्गके रूपमें कौन है? जो ज्वारके रूपमें है, वही भाटेके रूपमें है। समुद्रमें ज्वार आया तो कौन है? समुद्र है—

ज्वार शान्त हो गया यह समुद्रकी मुद्रा है—समुद्र माने जिसमें दो मुद्रा हो। सम्पुट आदि मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं। नृत्यकी मुद्राएँ भी होती हैं। तो समुद्र उसको कहते हैं जिसमें दो मुद्राएं हों—एक विक्षेपकी मुद्रा और एक शान्तिकी मुद्रा। ज्वार आया तो विक्षेपकी मुद्रा हुई—और भाटा आया तो शान्तिकी मुद्रा हो गयी। विक्षेपकी मुद्रा अलग है, शान्तिकी मुद्रा अलग है। परन्तु है तो समुद्र हो न! हमारा मुँह मुस्कुराता हो तब भी मुँह ही है और रुआँसा बना हो तब भी मुँह ही है। यह परमात्मा जब मुस्कुराता है तब यह सृष्टि बन जाती है।

निश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि।
स्मितमेतस्य चराचरस्य च सुप्तं महाप्रलयः॥

(भामतीकार मङ्गलश्लोक २)

आओ परमेश्वरको पहचान लें। परमेश्वरका श्वास क्या है? जैसे किसीकी सांस चल रही हो जोरसे और उसमें कोई शब्द निकाल ले कि यह 'नमः शिवाय' बोल रहा है कि 'नमो भगवते वासुदेवाय' बोल रहा है। ऐसे तो ये भगवान्‌के वेद हैं। और जब अपनी सांसको आवाज सुनकर आँख खोली तो (**वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि**) उसने देखा—पाँच भूत खड़े हैं। **स्मितमेतस्य चराचरस्य**। जब मुस्कुराया तब यह चराचर सृष्टि बन गयी और फिर आँख बन्द करके सो गया, बोले महाप्रलय हो गया। यह सब-का-सब परमेश्वरकी सृष्टिमें हो रहा है। उसीकी साँस है, उसीकी दृष्टि है, उसीकी मुसकान है, उसीका सोना है। यह विश्वसृष्टि उससे पृथक् नहीं है। इसीको बोलते हैं उल्लास। यह परमेश्वरका ही उल्लास है—ऐसे वल्लभाचार्य बोलते हैं। यह आत्माका उल्लास है—ऐसा कश्मीरी शैव बोलते हैं। लेकिन है यह उल्लास। परमात्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

अब आओ आप अपने जीवनमें देखो—**बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः।** तीन बातें आत्माके साथ सम्बन्ध रखनेवाली हैं। आपको बुद्धि किसने दी है ? जन्म होनेसे पहले बुद्धि आगयी। बुद्धिका उदय जहाँसे बच्चेकी धड़कन चलना शुरू होता है, वहींसे होता है और वहीं नहीं यह तो पिताके बीजमें जो कीटाणु होते हैं—उन कीटाणुओंमें भी बुद्धि होती है, बुद्धिका बीज वहाँ होता है और उन कीटाणुओंमें नहीं, जिस अन्नके खानेसे बीज बनता है, जिस रक्तसे बीज बनता है, उस रक्तमें भी बुद्धि होती है और जिस अन्नके खानेसे रक्त बनता है उस अन्नमें भी बुद्धि होती है। इसीसे कौन कैसा अन्न खाता है, उसका प्रभाव बालकपर पड़ता है। माता-पिताकी मनोवृत्तिका प्रभाव पड़ता है। बुद्धि नहीं होती तो कौन ग्रहण करता। दादा-दादी, नाना-नानीका प्रभाव आता है। वंशका प्रभाव आता है। भोजनका प्रभाव आता है। सङ्गका प्रभाव आता है। चरक संहितामें कहा गया है कि सात प्रकारका प्रभाव लेकर बालक जन्म लेता है। बुद्धि तो पहलेसे ही भगवान्के द्वारा दी गयी है। बुद्धिका अर्थ है—ग्रहणका सामर्थ्य अर्थात् किसी वस्तुको समझनेकी शक्ति। यह हमारी बनायी हुई नहीं है। भगवान्की बनायी हुई है।

फिर बुद्धिमें ज्ञान होता है। ज्ञान भी तत्त्वका ज्ञान अलग होता है और तत्त्वमें गढ़े हुए पदार्थोंका ज्ञान अलग होता है। बालकके सामने खाँडका खिलौना रख दो तो वह कहेगा यह गधा है, यह घोड़ा है, यह हाथी है, यह औरत है, यह मर्द है, उसकी दृष्टि खाँडपर नहीं जायेगी, उसकी दृष्टि खिलौनेकी शकलपर जायेगी। असलमें जिन लोगोंकी दृष्टि दुनियाकी शकल-सूरतमें ही लगी है और इसके तत्त्वकी पहचान नहीं है, उन लोगोंकी स्थिति-(माफ करना) बालकों-जैसी ही है। शकल-सूरत देखते हैं बालक और घरके समझदार देखेंगे—खिलौना प्लास्टिकका है या

स्टीलका है या माटीका है। तत्त्व-दृष्टि समझदारोंकी होती है और केवल शकल-सूरतपर जो दृष्टि होती है वह बच्चोंकी होती है। **बुद्धिर्ज्ञानं असंमोहः।** भगवान्‌ने बुद्धि दी और बुद्धिमें ज्ञान प्राप्त करनेकी शक्ति दी।

अब उस ज्ञानका फल अपने जीवनमें क्या होना चाहिए ? आप अपनेको बुद्धिमान् भी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि हम पहचानते हैं कि यह चीज क्या है—बहुत बढ़िया। पर एक बातपर ध्यान दें। भगवान्‌का यह योग—'असंमूढः'—कहीं तुम संमूढ तो नहीं हो गये। संमोहमें तो नहीं फँस गये ! भ्रम तो नहीं हो गया ? जमीन वही है। तुम्हारे पिता, पितामहने भी उसको हमारी कहा था और तुम भी कहते हो कि यह हमारी भूमि है और तुम्हारे पुत्र, पौत्रादि भी कहेंगे कि यह हमारी भूमि है। भगवान् न करे—कहीं तुम्हारे शत्रुके हाथ चली गयी तो वे भी कहेंगे कि हमारी है। मित्रके हाथ चली गयी तो वे भी कहेंगे हमारी है। किसकी है ? जब हम किसी वस्तुको अपनी मानकर संमोहित हो जाते हैं तब हम बुद्धि और ज्ञानका मार्ग छोड़ देते हैं। बुद्धि और ज्ञानका मार्ग है—संमोहित न होना। असंमोहो बुद्धिर्ज्ञानम्। यदि आपको भगवान्‌की दी हुई बुद्धि ठीक-ठीक प्राप्त है, भगवान्‌का दिया हुआ ज्ञान ठीक-ठीक प्राप्त है तो आप संमोहित नहीं होंगे। अपने ज्ञानको आप कसौटीपर कस लीजिये। कहीं आपने ज्ञानमें धूल-मिट्टी, भ्रम तो नहीं मिला दिया है। आपका सोना कितने कैरेटका है—आप देख लीजिये। कहीं भी संमूढ नहीं होना।

ईश्वरने पेड़ बनाया। आपका शरीर है, स्त्री है, पुरुष है—ईश्वर-सृष्टि है। लेकिन इसमें जो मेरापन आता है। यह पेड़ मेरा है—यह मेरापन ईश्वरका बनाया हुआ नहीं है। यह जीवका

बनाया हुआ है। क्योंकि वह चाहे तो छोड़ भी सकता है। किसीको दे सकता है। कोई उसको छीन सकता है। ईश्वरकी जो सृष्टि है वह तो रहती है ज्यों-की-त्यों और जीवकी जो सृष्टि है वह दुखदायी हो जाती है। तो वेदान्तियोंने जीव-सृष्टि, ईश्वर-सृष्टि करके दो विभाग कर दिया। और ईश्वर-सृष्टिमें दुःख नहीं है और जीवसृष्टिमें दुःख है। यह पेड़ किसीको दुःख नहीं देता, लेकिन जब कोई इसको मेरा मानेगा और दूसरा कोई मेरा मानेगा और दोनोंमें छीना-झपटी होगी—हम इसको काट डालना चाहते हैं, हम इसको रखना चाहते हैं, तब यह वृक्ष दुःखदायी हो जायेगा।

यह मैं पेड़की बात नहीं कर रहा हूँ—यह स्त्रीकी बात है, पुरुषकी बात है, धनकी बात है, जमीनकी बात है। इसीको योगियोंने दो विभाग कर दिया है। एक प्राकृत सृष्टि और एक आविद्यक सृष्टि। आप लोग यदि योग-दर्शन पढ़ते हों तो आपको उसमें यह बात मिल जायेगी। दो परिवार हैं। प्रकृतिके परिवारमें यह सारी सृष्टि बनती है। अविद्याके परिवारमें 'मैं' बनता है। मेरा बनता है—तेरा बनता है और मृत्युका भय बनता है। 'असंमूढः'—आप अविद्याके परिवारमें अपना नाम मत लिखवाइये। मर्दमशुमारीमें अपना नाम ईश्वरके परिवारमें, भगवन्-सृष्टिके रूपमें अपनेको सम्मिलित कीजिये। एक होती है अविद्याकी सृष्टि, इसमें दुःख होता है। एक होती है प्रकृतिकी सृष्टि, इसमें दुःख नहीं होता। एक होती है जीवकी सृष्टि उसमें दुःख होता है और एक होती है ईश्वरकी सृष्टि, उसमें दुःख नहीं होता है। लेकिन जीव या विद्या कुछ नया बना देती है सो नहीं है। उपादान, मसाला वही है। वही परमेश्वर मसाला है। अज्ञानके कारण उसमें दुःख हो गया और जहाँ भगवान्‌की पहचान है, वहाँ दुःख नहीं है। परमेश्वरकी पहचानके लिए वल्लभाचार्य 'भागवत-सृष्टि' बोलते हैं और कश्मीरी शैव 'आत्मसृष्टि' बोलते हैं। योगी लोग प्राकृत सृष्टि

और आविद्यक सृष्टि बोलते हैं। आत्मा तो असंग है। वेदान्ती लोग ईश्वर सृष्टि, जीव-सृष्टि बोलते हैं। चेतनकी प्रधानतासे जीव-सृष्टि, ईश्वर-सृष्टि और जड़की प्रधानतासे प्राकृत-सृष्टि, अविद्या-सृष्टि और तत्त्वकी प्रधानतासे, अनुभव-प्रधान तत्त्वकी दृष्टिसे आत्मसृष्टि और श्रद्धाप्रधान अनुभवकी दृष्टिसे भागवत-सृष्टि। यह सब-की-सब अपने-अपने स्थानपर बिलकुल ठीक हैं। **बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः।**

अब आप जीवनमें भगवान्‌के वैभवका दर्शन कीजिये। पहले तो बुद्धि भगवान्‌की, ज्ञान भगवान्‌का—ऐसा जानें और भ्रान्तिमें न पड़ें। कहीं भी मोह करके चिपकना नहीं—यह भगवान्‌की सृष्टि है। अब व्यक्तिगत जीवनमें देखो—**क्षमा सत्यं दमः शमः।** आपको जीवनमें यदि भगवद्-भावका अधिक-से-अधिक विकास करना है—आगे बढ़ना है, माने-बहुत सारी जमीन अपनी हो, ऐसा नहीं बहुत सारा धन अपना हो, सो नहीं, अपने अन्तःकरणके सम्पत्तिकी जो वृद्धि है—यह **क्षमा सत्यं दमः शमः** अन्तःकरणकी सम्पदा हैं। आपके पास पूँजी कितनी है? आप तहाँतक अपराध क्षमा कर सकते हैं। हनुमान्‌जीने सीताजीसे कहा—माता, इन राक्षसियोंने आपको बहुत सताया—हम इनको नोच लें, इनका अङ्गभङ्ग कर दें। इनके बाल खींच लें, इनको मार डालें। जानकीजीने कहा—अरे हनुमान्, ऐसा मत बोलो। इसमें न रामका यश बढ़ेगा, न रामके भक्तका यश बढ़ेगा, न मेरा यश बढ़ेगा। आर्य पुरुषका धर्म है—करुणा—चाहे कोई पापी हो, चाहे कोई पुण्यात्मा हो, चाहे वधके योग्य हो, आर्य पुरुषको तो करुणा करनी चाहिए।

सृष्टिमें ऐसा कोई नहीं है जिससे कोई-न-कोई अपराध न हुआ हो। मुझसे भी अपराध हुए हैं। मैंने स्वर्ण मृगके पीछे रामचन्द्रको भेज दिया। लक्ष्मणको दुर्वचन कहा। लक्ष्मण-रेखाका उल्लङ्घन किया। अब दण्ड दो तो हम भी दण्डके योग्य हैं। जीवनमें

क्षमा-क्षमा-क्षमा—यही क्षमता है। क्षमा करना सामर्थ्यका लक्षण है, निर्बलका लक्षण नहीं है। क्षमा क्या है? अपने जीवनकी क्षमता है। हम कितना सह सकते हैं? यही अपनी नापतौल है कि हम कहाँतक क्षमा कर सकते हैं। आत्मबल क्षमा है और जो जितना अधिक क्षमा करेगा वह उतना ही आत्मबलको प्राप्त करेगा। दण्ड देनेका सामर्थ्य रहने पर भी क्षमा करना, यह आत्म-बलकी वृद्धिका सर्वोत्तम उपाय है और सुगम-से-सुगम उपाय है। बुद्धिके साथ क्षमाको जोड़ दो। ज्ञानी पुरुष सत्यको पकड़कर रखता है। सत्यके बारेमें कुछ उलटी सीधी बात भी हम कभी-कभी बोलते हैं, क्योंकि भगवान्का स्वरूप तो सब है। महाभारतमें एक स्थानपर ऐसा आया है—**न सत्यवचनं सत्यम्**—सच बोलनेका नाम सच नहीं है। 'नासत्यवचनं मृषा'—असत्य बोलनेका नाम झूठ नहीं। जिससे प्राणियोंका आत्यन्तिक हित हो, दूसरेकी भलाईके लिए ही जो बात की जाय, उसको हम कहते हैं सत्य। भीष्म-पितामहका वचन है—

यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम।

(शान्तिपर्व ३२९.१३)

पति-पत्नी एकान्तमें रहकर आये। बच्चेने माँ-बापसे पूछा—क्या कर रहे थे? आपको उस समय जैसे बच्चेकी शिक्षामें कोई अन्तर न पड़े, ऐसा बोलना चाहिए। जैसे बच्चेमें माता-पिताके सामने उद्दण्डता, अशिष्टता, उच्छृङ्खलता न आवे ऐसे बोलना चाहिए। सत्यके नामपर कटु तो नहीं बोलना चाहिए। यह मनुस्मृतिका वाक्य है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

(४.१३८)

सत्य बोलो, प्रिय बोलो और अप्रिय, अनावश्यक सत्य मत बोलो। सत्यमें आनन्द भी होना चाहिए और आनन्दमें ज्ञान होना चाहिए। आपकी वाणीमें सच्चिदानन्द होना चाहिए। आनन्द-रहित वाणी होनेपर भी अधूरी हो गयी। सत्यसे रहित ज्ञान, ज्ञान होनेपर भी अधूरा हो गया। ज्ञानमें भी सत्य और आनन्द होना चाहिए। आनन्दमें भी सत्य और ज्ञान होना चाहिए और ज्ञानमें भी सत्य और आनन्द होना चाहिए। तब ये भरपूर होते हैं। अपने जीवनमें सत्य होना चाहिए। यदि आप सुख और सत्य दोनोंको अलग-अलग कर देंगे तो दुःखी हो जायेंगे। कभी-कभी सत्यके नामपर हम लोग कटु बोलते हैं, सत्यमें कटुता नहीं चाहिए। सत्यमें तो प्यार चाहिए। जो सुने उसके मनमें भी सत्यसे प्यार हो और जो बोले उसके मनमें भी सत्यसे प्यार हो। इसके लिए चाहिए दम। दम माने हमारी जीभ काबूमें हो। हमारी आँख काबूमें हो, हमारे कान काबूमें हों—वशमें हों। आप घोड़ेकी सवारी करें—तो लगाम चाहिए, बागडोर चाहिए, जिसकी ओर देखना नहीं है उसकी ओरसे आँख फेर लेनेका सामर्थ्य होना चाहिए।

लोनावलामें एक मशीन रखी है। उसके भीतर मुँह डालकर देखते हैं। उसमें बुद्धका चित्र है। एक श्रीकृष्णका भी चित्र है, मन्द-मन्द मुसकराते, बाँसुरी बजाते हुए। एक विदेशी नर्तकीका चित्र है, वह नग्न नृत्य कर रही है। यह एक गन्दा चित्र है। जब आदमी देखता है भीतर, तो वह समझता है कि मैं भीतर आड़में देख रहा हूँ—मुझे कोई देख नहीं रहा है कि मैं क्या देख रहा हूँ, लेकिन उसकी नजर किस कोणपर गयी यह रेकार्ड हो जाता है। उसने बुद्धके चित्रको देखा है प्रेमसे या नर्तकीके चित्रको देखा है, या कृष्णके चित्रको देखा है—यह रेकार्ड हो जाता है।

हमलोग जो बाहर देखते हैं—उसमें अपनी आँख भी काबूमें होनी चाहिए। दो व्यक्ति आपसमें प्रेमी हैं, क्या बात कर रहे हैं, उनकी बात सुननेके लिए हमारा कान नहीं जाना चाहिए। वहाँ कान बन्द हो जाना चाहिए। आँखको फेर लेना चाहिए। हमारे जीवनका जो यन्त्र है—हमारा जो वटन है, इस यन्त्रको सञ्चालित करनेके लिए, वह हमारे हाथमें होना चाहिए। इसीको बोलते हैं, इन्द्रियोंका संयम।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय (४.३९)।

जिसकी इन्द्रियाँ संयत हैं। आप दूसरेको अपने वशमें करना चाहते हैं। पति चाहता है पत्नी हमारे वशमें रहे। पत्नी चाहती है पति हमारे वशमें रहे। बेटा चाहता है बाप हमारे वशमें रहे और बाप चाहता है बेटा हमारे वशमें रहे। मालिक चाहते हैं नौकर हमारे वशमें रहे। नौकर चाहते हैं कि मालिक हमारे अनुसार चले। यह दूसरोंको वशमें रखनेकी जो इच्छा है वह है तो स्वाभाविक—उसमें हमको कोई आपत्ति नहीं है और यह सबके मनमें होती है। लेकिन सबसे पहले जो वशमें करनेकी चीज है वह तो अपने शरीरमें ही है। जब हमारा हाथ हमारे वशमें नहीं हुआ तो नौकर वशमें कैसे होगा? जब हमारा मन हमारे वशमें नहीं हुआ तो पति-पत्नी वशमें कहाँसे होंगे? सबसे पहले वशमें करने योग्य हमारे शरीरमें जो क्लर्क हैं, मुनीम हैं, चपरासी हैं—अर्थात् हमारे शरीरमें जो इन्द्रियाँ हैं—क्लर्क न बोलकर क्लार्क बोल दें—कलाके भास्कर कलाके सूर्य, वे हमारे वशमें हों। हमारे शरीरमें कई नौकर हैं। जैसे नौकर शब्द हैं, वशमें हों। कई नौकर हैं—नौकर शब्द वैदिक है—'नो करः, करो न भवति'—यह हाथ नहीं है माने हाथके समान है। जैसे अपना हाथ काम करता है—

ऐसे हो अपने घरमें हाथके समान जो है वह नौकर है। वे हमारे हाथ हैं, हमारे पाँव हैं। ये दान्त होने चाहिए।

वृन्दावनमें श्रीहरि बाबाजी महाराज रहते थे। वे घूमने रोज ५-७ मील जाते थे। उनका नियम था और जब निकलते तो लोग घड़ी मिलाते थे। ये कमरेसे निकले हैं तो इतना बजा है। वे हाथ छातीपर रखकर चलते थे और ५-७ मील घूमकर आनेपर भी उनका हाथ वहीं होता था। क्या मजाल कि हाथ वहाँसे हट जाय। हाथ उनका आज्ञाकारी था। जीभ उनकी आज्ञाकारिणी थी। बहुत थोड़ा बोलते थे। और आँखसे तो इतना कम देखते थे कि उनके ६-८ हाथ आगे एक आदमी चलता था और एक पीछे चलता था। नहीं तो रास्तेकी ओर भी नहीं देखते थे। अभी ८५ वर्षके होकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। कितना नियम-कायदा था उनके जीवनमें! हम उन्हें कथा सुनाते थे तो हमको कह देते थे कि देखोजी, आज ४ बजकर २९ मिनिटपर कथा बन्द हो जानी चाहिए। २९ मिनिटका ख्याल रखना पड़ता था कि सेकेन्ड-मिनट कब आवे, सावधान! यह आपको अति मालूम पड़ेगी पर उनके जीवनमें नियम कितना था, नियन्त्रण कितना था यह देखने योग्य है। और 'शम:'—शमका अर्थ होता है शान्ति। भगवान्‌की दी हुई यह सम्पदा है अपने जीवनमें—अपराधीके प्रति क्षमाका भाव हो और सत्यमें दृढनिष्ठा हो तथा अपनी इन्द्रियाँ वशमें हों और मन बात-बातमें उद्विग्न न हो।

मनकी शान्ति सर्वोत्तम वस्तु है। बाहरका प्रभाव अपने मनपर कम पड़े, इसको आदत डालिये। दो बालक हमने देखे। एक साथ दोनों धूपमें खेलने गये और एक साथ लौटकर आये। एकको आगया बुखार और एक स्वस्थ रहा। एक समय तक दोनों धूपमें खेले, दोनोंका परिश्रम समान हुआ। दोनोंके ऊपर धूप

बराबर पड़ी लेकिन एक बीमार हो गया और एक बीमार नहीं हुआ। धूपके प्रभाव से बीमारी आती तो दोनों बच्चोंको आती। उसके शरीरमें जिस प्रकारके उपादान बन गये थे, उन्होंने धूपको ज्यादा ग्रहण किया और वह बीमार पड़ गया और दूसरेके शरीरमें गरमी ग्रहण करनेका जो मसाला है वह कम था, वह बीमार नहीं पड़ा। इसी प्रकार हमारे जीवनमें अशान्ति आती है—किसी-किसीको बहुत छोटी बातसे अशान्ति आजाती है और किसीको बड़ी-बड़ी बातसे भी अशान्ति नहीं आती और ऐसा भी होता है कि कभी किसी आदमीकी जरा-सी बातपर अशान्ति आगयी और कभी बड़ी-बड़ी बातपर भी अशान्ति नहीं आयी। हमारी आदत अच्छी पड़नी चाहिए।

हम जो काम करते हैं, जो बोलते हैं, जो भोजन करते हैं वह हमारे लिए अशान्ति-दायक न हो। दूसरोंका तो कोई ठेका नहीं है कि कौन कैसा रहे। किसीकी जीभ पकड़कर तो हम मौन बना नहीं सकते, किसीका हाथ पकड़कर उससे अच्छा काम करवा नहीं सकते। किसीका मन पकड़कर उसको अपने अनुकूल चला नहीं सकते। तो जो अशक्य है, जिसको हम बदल नहीं सकते वह चीज हमारे जीवनमें अशान्ति क्यों डाले? जान लिया यह काम हमारे करनेका नहीं है, बस खतम। मरना है, मर गया कोई, अब हम जानते हैं कि इसे लौटा नहीं सकते, तब संमोहका तो कोई हेतु ही नहीं है।

जो अशक्यानुष्ठान हो, माने जिस क़ामको हम कर ही न सकते हों, उसके लिए हमारे मनमें अशान्ति नहीं आनी चाहिए और जो हो गया उसके लिए भी अशान्ति नहीं आनी चाहिए। हम जो छोटी-छोटी बातपर अपने मनको अशान्त कर लेते हैं, यह जीवनमें

अच्छी आदत नहीं है। भगवान्‌ने हमको क्षमा दी है, सत्य दिया है—भगवान्‌ने हमको इन्द्रियोंपर संयम दिया है, भगवान्‌ने हमारे मनमें शान्ति दी है। यह जो भगवान्‌का दिया हुआ अमृत है, रत्न है, हमारे जीवनमें उसका लाभ उठाना चाहिए। यही भगवान्‌की विभूति है। अपनी विभूतियोंको भगवान्‌ने बाँट दिया है। ऐसी विभूति—स्त्रियोंके लिए भगवान्‌ने क्या विभूति दी है।

कीर्तिश्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा, धृतिः क्षमा। (१०.३४)

भगवान्‌ने वृक्षोंमें अपना वैभव दिया, पक्षियोंमें अपना वैभव दिया, लताओंमें अपना वैभव दिया हमारे क्रिया-कलापोंमें अपना वैभव दिया। जहाँ जो—

यद् सद् विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजशोंऽ-संभवम्॥ (१०.४१)

उस भगवान्‌के प्रति हमारे हृदयमें कृतज्ञता आनी चाहिए, जिसने इतकी सम्पदा हमको दी है। **सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।** तीन पहले तत्त्वज्ञानके साधन हैं। चार अन्तः-करणकी शुद्धिके साधन हैं और उसके बाद **सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।** यह भी भगवान्‌की विभूति हैं—जैसे बुद्धि-ज्ञान असंमोह—भगवान्‌का आत्मयोग-रूप विभूति है—क्षमा, सत्य, दम, शम—अन्तःकरण-शुद्धिरूप विभूति है और **सुखं दुःखं भवोऽ-भावो भयं चाभयमेव च**—यह लोक-व्यवहार रूपी विभूति है।

संसारमें जो पैदा हुआ है उसके जीवनमें कभी सुख आता है, कभी दुःख आता है। कभी जन्म होता है, कभी मृत्यु आती है। कभी भय आता है। कभी निर्भयता आती है। ये लौकिक व्यवहार हैं। आप यह न समझें कि आपके जीवनमें कभी भय आगया तो आपका नाश हो गया। आपके जीवनमें कभी दुःख आगया तो

आपका नाश हो गया। ये तो जीवनको खरा करनेके लिए हैं। जैसे सोनेको तपाते हैं और कोई समझे कि सोनेका नाश हो रहा है। नहीं, तपानेसे सोना और निखरता है। इसी प्रकार हमारे जीवनमें सुख और दुःख दोनों दिये।

मैंने मध्य प्रदेशमें देखा एकके घरमें कोई रसोई बना रहे थे उस चीजको क्या बोलते हैं, हमें मालूम नहीं—हमने खाया तो कई बार है। थोड़ा-सा कढ़ाईमें घी और वेसन डालकर चलाते हैं फिर उसपर मट्ठेका छींटा देते हैं। एक ओर घी तो बेसनके लिए गरम होता है और जो मट्ठेका छींटा देते हैं वह ठण्डा होता है। एक ओरसे गरम और एक ओरसे ठण्डा—उसको चलाते हैं तो छोटा-छोटा कण बन जाता है। खानेमें बहुत स्वादिष्ट होता है। जो गरमी और सरदी दोनों सहेगा उसके जीवनमें स्वाद आयेगा और जो चाहेगा कि हम गरम ही गरम रहें तो जल जायेगा, चाहे ठण्डा ही ठण्डा रहे तो जम जायेगा। केवल ठण्डा नहीं—जीवनमें ठण्डक भी चाहिए और गरमी भी चाहिए। कभी गरमीसे काम बने तो अपना काम बना लेना चाहिए। लेकिन वह थोड़ी देरके लिए होनी चाहिए। कभी आँख टेढ़ी करनेसे काम बने तो आँख टेढ़ी कर लो। और कभी आँखमें प्रेम भरनेसे काम बने तो आँखको प्रेमसे भरलो। यह जीवनके दो तत्त्व है—

सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।

सुख, दुःख—यह दोनोंमें 'ख' है। एक चीज ऐसी है जो सुखमें है और दुःखमें भी। वह क्या है। वह है 'ख'। सुखमें सु उपसर्ग है और ख धातु है—दुःखमें दुः उपसर्ग है और वही-का-वही है जो दुःखमें है। 'दुष्टं खं यस्मात्'। यह 'ख' माने हृदयाकाश। जिस वस्तुके आनेसे हमारा हृदयाकाश सुन्दर, स्वच्छ, निर्मल हो जाता है उसका नाम है सुख और जिस प्रभावके

आनेसे हमारा हृदय दूषित हो जाता है, उसका नाम है दुःख। जैसे आकाश कभी स्वच्छ होता है तब भी आकाश ही है और आकाशमें कभी आँधी आगयी, कभी धूल उड़ गयी, कभी गरमी पड़ गयी, कभी सरदी पड़ गयी तब भी आकाश ही है।

हमारा हृदय भी एक आकाश है। इसमें कभी बादल आते हैं, कभी धूल उड़ती है—ठीक है लेकिन इसका स्वभाव स्वच्छ है, इसका स्वभाव आकाशके समान निर्मल है। जीवनमें जो सुख-दुःख हैं, ये घबड़ानेकी चीज नहीं हैं। न सुख पकड़कर रखनेकी चीज है। न दुःख भगानेकी चीज है। यह हमारे हृदयकी बनावटके अनुसार आते ही रहते हैं—ये आवें और जायें—**नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।** जैसे रथका पहिया नीचे-ऊपर होता है, वैसे ही सुख-दुःख आते रहते हैं। ये जीवनके दो पहलू हैं—इसमें घबराना नहीं चाहिए। ये भगवान्‌की देन हैं। भगवान्‌की विभूति हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रवचन—४

१३-११-८०

> बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
> सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥
> अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
> भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ (१०.४-५)

जीवनमें सुख-दुःख आते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति संसारमें नहीं होता जिसके जीवनमें सुख-दुःख दोनों न आये हों। ये भगवान्के बनाये हुए हैं। किसके जीवनमें केवल सुख-ही-सुख आया है या किसके जीवनमें केवल दुःख-ही-दुःख आया है ?

> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

जैसे रथका पहिया नीचेसे ऊपर, ऊपरसे नीचे घूमता रहता है, वैसे सुख-दुःखका एक चक्र है, जो सबके जीवनमें घूमता रहता है।

एक हलकी-फुलकी बात आपको सुनाता हूँ। संन्यासी होनेके वाद दस वर्षके अन्तरसे मैं काशी गया। जिनसे मैंने श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया था उनके घरमें बिना बुलाये, बिना किसी सूचनाके पहुँच गया। हमारे गुरुजीकी पत्नी थीं। आकर बैठ गयीं और खूब रोयीं। इन ८-१० वर्षोंमें उनके पुत्रकी मृत्यु हुई थी। फिर उनकी पौत्रीका विवाह बहुत अच्छे घरमें हो गया था। उसका वर्णन करने लगीं तो खूब हँसी। इस तरहसे ८ वर्षका

इतिहास सुनाते-सुनाते दस बार तो रोयीं और दस बार हँसीं। हमलोग अपनी ओर भी देखें! हमारे मनकी दशा कैसी होती है!

उनके एक पुत्रको ऊँचा पद मिल गया था। हमारे गुरुजी १०० वर्षके हो गये थे। उनको आँखोंसे दिखता नहीं था। उन्हें श्रीमद्भागवत आदिसे अन्ततक टीका-टिप्पणी सहित, व्याकरण-सहित कण्ठस्थ था। एक रुपया रोज उनको मन्दिरमें मिलता था। और उसीसे उनकी उदर-पूर्ति होती थी। कहीं वेतन नहीं लेते थे। उस मन्दिरमें जाकर थोड़ी देर भागवत सुनाते थे और उन्हें एक रुपया रोज मिलता था। अबसे ५५ वर्ष पहलेकी बात है।

कहना यह है कि हम अपने जीवनमें कितने संवेदनशील हो गये हैं— क्षणमें रोना, क्षणमें हँसना। क्षणमें रोष, क्षणमें तोष। कहीं एक स्थिति तो चाहिए न! स्थिरता चाहिए। एक स्थायी भाव चाहिए। स्थायी भाव सुखमें नहीं होता है और दुःखमें भी स्थायी भाव नहीं होता है। थोड़ी देरके लिए सुखमें, थोड़ी देरके लिए दुःखमें स्थिर हो जाते हैं। दोनोंके परे जो अपना स्वरूप है, जो सुखके समय सुखी होता है; दुःखके समय दुःखी होता है और दोनोंमें एक होनेसे दोनोंसे न्यारे होता है, उसपर ध्यान नहीं जाता। यदि हम अपनेको इसमें स्थिर कर लें कि—सुख आता है जायेगा, दुःख आता है जायेगा; कोई चीज़ दुनियामें स्थिर रहनेवाली नहीं है। हमारा जो आत्मा है यह अजर है, अमर है, अचल है, स्थायी है। शेष सब तो सिनेमाके परदेपर जैसे आते हैं वैसे आते हैं। ऐसा समझ लें तो, सुख-दुःखका जितना असर आप अपने ऊपर ले लेते हैं, उतना नहीं पड़ेगा।

भगवान्‌ने यहाँ एक दूसरी ही ओर हमारी दृष्टि खींची है। आप यह मत देखिये कि सुख कैसे आया। यह भी मत देखिये कि दुःख कैसे आया। देखनेकी वस्तु यह है कि सुख-दुःख देनेवाला

कौन है ? हमारी माँने एक दिन रबड़ी-मलाई खिलायी। बहुत खुशी हुई। पर एक दिन उसने कहा कि आज कुछ खानेको नहीं मिलेगा। सिर्फ सूप पीओ। आज तुम्हें रोटी नहीं मिलेगी। जब माँ कह रही है कि आज रोटी खाना ठीक नहीं है। उसका कितना प्रेम होगा, उसका कितना हित होगा। क्या खिलाया जा रहा है यह मत देखो—खिलानेवाला कौन है यह देखो। जब खिलानेवालेपर नजर जायेगी तब आप देखेंगे कि वह आपका इतना हितैषी है—इतना प्रेमी है कि वह आपको खिलाता है, तब भी आपके हितके लिए और आपको भूखा रखता है तब भी आपके हितके लिए। देनेवालेपर नजर जानी चाहिए। इस प्रसंगमें श्रीकृष्णने हमारी नजर खींची है—

सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः॥
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।

मैं हूँ—जो तुम्हें सुख भी देता हूँ और दुःख भी देता हूँ। सुख देनेवालेको देखो, दुःख देनेवालेको देखो। जब उसपर दृष्टि जायेगी तो सुख, दुःख गौण हो जायेगा और देनेवाला मुख्य हो जायेगा। जहाँ देनेवालेपर नजर गयी वहाँ सब-का-सब आनन्दमय हो जायेगा। सब-का-सब मङ्गलमय हो जायेगा।

कहते हैं एक वार श्रीराधारानी और श्रीकृष्ण क्रीडा कर रहे थे, नृत्य कर रहे थे। श्रीकृष्णका नाखून राधारानीकी कलाईमें लग गया। श्रीराधारानीने छिपा लिया। बादमें श्रीकृष्णने देखा। बोले—प्रियाजी, आपको बहुत कष्ट हुआ! परन्तु दो महीनेके बाद देखा तो यह घाव ज्यों-का-त्यों। उन्होंने पूछा यह सूखा क्यों नहीं, अच्छा क्यों नहीं हुआ ? तो बोले कि यह तो तुम्हारा दिया हुआ है, हम इसको अच्छा क्यों करेंगे ? इसको देख-देखकर तुम्हारी

याद आती है। अपने प्यारेके द्वारा दिया हुआ कष्ट भी सुख ही है।

हमलोग बचपनमें एक दूसरेको चिकोटी काट लेते थे तो उससे लड़ाई नहीं होती थी—अच्छा तुम हो। आकर पीछेसे किसीने आख बन्द कर ली—हम कौन हैं, पहचान लिया ? पहचान लिया। यह तो हमारा मित्र है, शत्रु नहीं है। यदि हम अपने उस मित्रको पहचान लें जो सुखके पीछे रहकर सुख देता है, दुःखके पीछे रहकर दुःख देता है। वही कभी नाखूनसे काटता है तो कभी दाँतसे भी काट लेता है।

एक बार मुझे ऐसी हँसी आयी, जो बन्द न हो। लोटपोट हो गया और ऐसा लगे कि अब प्राण गये। हँसी बन्द ही न हो। हमारे एक मित्र थे, उनकी समझमें बात आगयो और एक चाँटा कसकर उन्होंने हमको मारा और हमारी हँसी बन्द हो गयी। तो क्या उनका चाँटा मारना बुरा था ? बुरा नहीं था, वह तो बचानेवाला था।

नारायणदास बाजोरिया बता रहे थे कि मैं लन्दनमें कहीं सड़क पार करने लगा, वहाँ सड़क पार करनेकी जगह नहीं थी। दूसरी ओरसे बड़ी तेजीसे मोटर आयी, एक आदमीने हमें ऐसा धक्का दिया कि हम फुटपाथपर गिरते-गिरते बचे। पहले तो बहुत बुरा लगा पर फिर देखा कि वहाँसे मोटर सर्रसे निकल गयी ! यदि वह धक्का न देता तो मैं तो मर ही जाता।

हमलोग अपने हितैषीको पहचान नहीं पाते हैं जो छिपकर हमारा हित करता रहता है। उसपर जो विश्वास है, उसपर जो आस्था है, उसपर जो दृष्टि है, वह जीवनके लिए बहुत बड़ा सम्बल है। हमलोग चीज तो देखते हैं, रुपया दिया

कि छीन लिया ? हमारे आदमी मिले कि बिछुड़े—यह तो देखते हैं। लेकिन यह करनेवाला कौन है; उसपर नजर नहीं जाती है। यहाँ भगवान् हमको यह बता रहे हैं कि तरह-तरहके सुख आते हैं तुम्हारे जीवनमें, लेकिन देनेवाला मैं हूँ। तरह-तरहके दुःख आते हैं जीवनमें, लेकिन देनेवाला मैं हूँ।

इस सुख-दुःखका मूल उद्गम, मूल स्रोत, मूल उत्स क्या है, उसपर दृष्टि नहीं जाती। जो शास्त्री होते हैं—वे जहाँ हमारी नजर नहीं जाती है वहाँ हमारी नजर खींचते हैं। द्वितीयाके दिन हमारे पितामह चन्द्रमाका दर्शन करते थे और कराते थे। उसको वहुत माङ्गलिक मानते थे। वे उँगली उठाते—वह दख वह चन्द्रमा—हम उनकी उँगलीको ओर ही देखते। तो वे डाँटते कि तुम मेरी उँगली मत देखो। जिधर मेरी उँगली दिखा रही है, उधर देखो, तब चन्द्रमाका दर्शन होगा। ये जो शास्त्र हैं ये उँगलीके इशारे से हमको कोई चीज दिखाते हैं और वह चीज हमारे हृदयमें बैठा हुआ परमेश्वर है, जिसे हम नहीं देख रहे हैं। वे परम कृपालु, करुणावरुणालय—कहते हैं—'तुम्हारे जीवनमें सुख-दुःख आते हैं—ये तरह-तरहके सुख दुःख मैं ही देता हूँ।'

बरसानेमें एक महात्मा थे, उन्होंने अपना जीवन सुनाया। एक लड़केको जहर पिलाना था—उसकी माँने ही लड़केके लिए जहर तैयार किया। ऐसा कोई काम आगया जिससे लड़केको मालूम पड़ गया कि यह जहर है, पर उसने कहा कि जिस माँने हमको दूध पिलाया, नौ महीनोंतक अपने पेटमें रखा—पैदा होनेपर दूध पिलाया, पालकर हमको बड़ा किया—अगर वही माँ आज हमको जहर देती है तो इसको पीनेसे इनकार करना मेरी कृतघ्नता होगी और छीनकर पी गया।

ईश्वरके प्रति मनुष्यके मनमें कैसा भाव होना चाहिए ? वे प्रभु जो कुछ करते हैं, हमारे मङ्गलके लिए करते हैं, हमारे हितके लिए करते हैं। सुख भी वही देते हैं, दुःख भी वही देते हैं। **भवोऽभावः**—भव माने जन्म, अभाव माने मृत्यु; जिसने जन्म दिया है, वही मृत्यु देता है और अच्छा जन्म देनेके लिए मृत्यु देता है। इस जन्मके जो काम थे, जो प्रयोजन थे, जिन कारणोंसे यह जन्म मिला था, वह पूरा हो गया। मृत्युसे डरनेका तो कोई कारण नहीं है। हम कभी-कभी सोचते हैं—कि इतने वर्षोंमें हमने ऐसा क्या अच्छा काम कर दिया कि ईश्वर हमारी २-४ वर्ष उमर और बढ़ा दे, तो हम और बढ़िया काम करेंगे। अरे इतने दिनोंमें तो कुछ किया ही नहीं। ७० वर्षमें तो कुछ हुआ ही नहीं, २-४ वर्ष भगवान् और भी उमर बढ़ा दें तो उसमें हम ऐसा क्या कर गुजरेंगे।

जब उसका हुक्म आवे, चलो। यह नहीं कि एक क्षण ठहर जाओ। दोनों बात नहीं होनी चाहिए। हाय-हाय, मैंने जीवनमें यह काम नहीं किया—इस प्रकार पछताते हुए नहीं मरना चाहिए। और जैसे एक सैनिकको आज्ञा दी जाती है—बन्दूक उलट दो, मुड़ जाओ, सीधे खड़े हो जाओ, जैसे एक सैनिक आज्ञा पालन करता है, वैसे ईश्वरकी आज्ञाका पालन करनेके लिए हमको क्षण-क्षण तैयार रहना चाहिए।

सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।

भगवान् डराते हैं और निर्भय भी करते हैं—क्या अद्भुत है ! बचपनकी बात सुनाता हूँ। आप कहेंगे गीताकी व्याख्या करो। गीताकी असली व्याख्या पोथीमें नहीं होती—लिखी हुई नहीं होती है और वह व्याख्यानमें भी नहीं होती है। गीताकी असली

व्याख्या तो अपने जीवनमें होती है। हम बच्चे थे तो खलिहानमें सोनेका आग्रह करते थे, जहाँ हमारे जौ, गेहूँ, धान खेतोंमें-से काटकर रखे जाते थे। हमारे एक चाचा थे। वे रातको काला कम्बल ओढ़कर भालूकी तरह बनकर सामनेसे आये। हम डर गये। तो सोचा कि खलिहानमें नहीं सोना चाहिए; यहाँ तो भालू आता है। पर वे भालू बनकर क्यों आये? हमको रोज खलिहानमें सोनेका जो आग्रह था वह आग्रह तोड़नेके लिए। उन्होंने डराया जरूर परन्तु अपनी जानमें उन्होंने हमारा हित किया कि हम ऐसी जिद्द न करें।

एक दिन मैंने देखा कि कोई भूत-प्रेतवाला आया था। उसने कहा कि हम तुम्हें भूत दिखा देंगे। हम अपने दरवाजेपर ही बैठे थे। सामने एक फर्लांगकी दूरीपर एक पेड़ था। उससे बीच-बीचमें चिनगारियाँ छूट रही थीं और नीचे आग गिर रही थी। बोला देखो वह भूत है, आग बरसा रहा है। हमारे चाचा आगये। पिता तो थे नहीं—उन्होंने उसको डाँटा। क्यों बच्चेको डरा रहे हो? वह भूत नहीं है। यह जो बारूद होती है वह पोटलीमें भरकर बाँधकर उसने नीचेसे आग लगा दी थी। जब बारूदकी पोटली आगसे लगती बारूद जलकर गिर जाती और जब गाँठ आती तब बन्द हो जाती। जब गाँठ जल जाती है तो फिर बारूद जलती है। वह तुमको डरानेके लिए ऐसे कर रहा है। हमको भय चाचाने दिया क्योंकि हम अनुचित चिद्द कर रहे थे। और हमको निर्भय भी चाचाने बनाया। तो यह जो सबका चाचा है—सबका बाप है, सबका दादा है, वह हमको जरूरत पड़नेपर डराता भी है और निर्भय भी बनाता है। भगवान् ही हमारा पिता है, हमारा पितामह है—जैसा कि भगवान्ने ही कहा है—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥
(९.१७-१८)

हमको सब दिखता है—फूल दिखते हैं पर फूल खिलानेवाला नहीं दिखता। हमको पेड़ दिखता है पर पेड़ पैदा करनेवाला नहीं दिखता है। हमको आँखसे चीजें दिखती हैं पर जिसने हमारी आँखमें ज्योति डाली है वह **चक्षुसः चक्षु**—वह जो हमारी आँखों-की-आँख है—**श्रोत्रस्य श्रोत्रम्**—जो हमारे कानका कान है—प्राणस्य प्राणाः जो हमारे प्राणों-का-प्राण है, उसपर हमारी नजर नहीं जाती।

गीतामें भगवान् बोलते हैं—हमारी ओर देखो।

सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥

अहिंसा—अहिंसा शब्दका संस्कृत भाषामें अर्थ होता है—मनसे, वचनसे, कर्मसे किसीको कष्ट नहीं देना। किसीके शरीरको कष्ट नहीं देना।

हम अपने परिवारकी बात सुनाते हैं। जन्मसे हम लोगोंके यहाँ मन्त्र देनेकी परिपाटी थी। शिष्य बनाया करते थे हम। हमारे घरका पेशा था। ज्योतिष बताना, मन्त्र देना—यह रोजगार था। पहले बताया करते थे। चोरी, जारी, झूठ और हिंसा-चार बात छोड़ना। मन्त्र लेते हो तो चार बात छोड़ देना। सब लोग मन्त्र लेते समय तो कहते हैं कि हाँ हम चारों छोड़ देंगे, पर छोड़ते नहीं। संशोधन किया कि अच्छा हम और कुछ छोड़नेको नहीं कहते हैं, सिर्फ एक चीज छोड़ दो। जान-बूझकर किसीको तकलीफ मत दो। एक बात अपने जीवनमें आजाय तो अच्छा है। क्योंकि वेदकी आज्ञा है—

मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि।

संसारके किसी भी प्राणीको सताओ मत, दु:ख मत दो। तुम्हारे भीतर परमेश्वर बैठा है। किसीको तकलीफ देते हो तो उसके सामने ही तो देते हो। मालिकके सामने हम अपराध करते हैं। कानून अपने हाथमें लेते हैं—सबका मालिक परमेश्वर सामने बैठा हुआ है और उसीके सामने हम दूसरेको तकलीफ देते हैं। तीन चीज जीवनके लिए मूल मन्त्र हैं, महौषध हैं। जिसके जीवनमें ये हैं, वही महात्मा है। केवल तीन—**अहिंसा, समता, तुष्टिः**। ये भगवान्के दिये हुए अपने जीवनके लिए रत्न हैं। जान-बूझकर किसीको तकलीफ न पहुँचाओ। सबके प्रति हमारे मनमें समभाव हो। और अपने भीतर सन्तोष बना रहे। **अहिंसा, समता, तुष्टिः**—ये सद्गुण हैं। यदि आगया तो आपके जीवनमें भगवान् प्रकट हैं। इसीको जीवन्मुक्त बोलेंगे। उसने परमार्थ और व्यवहार सबका रहस्य समझ लिया जिसके जीवनमें ये गिनी हुई तीन बातें आजायँ।

एक महात्माके ऊपर किसीने आक्रमण किया। वह आक्रमण सफल नहीं हुआ। परन्तु जो महात्माजीके भक्त थे, उन्होंने उसको पकड़ लिया। इसने हमारे गुरुके ऊपर आक्रमण किया है, मार डालेंगे इसको। महात्माजी दौड़े—जाकर उसे अपने बाँहमें भर लिया, बोले—देखो इसको अगर कोई कुछ कहेगा या इसका अपमान करेगा या मारेगा तो हम यह देश छोड़कर चले जायेंगे। और फिर कभी यहाँ नहीं आयेंगे। हम तुम लोगोंको फिर कभी नहीं मिलेंगे। श्रीमद्भागवतमें तो ऐसा आया है—बात आदर्शकी है—लेकिन बहुत ऊँचा आदर्श जो अपने जीवनमें नहीं आता है, उसको भी जानना अच्छा रहता है, उससे बहुत बल, बहुत शक्ति मिलती है। संस्कृतमें एक श्लोक है जिसका तात्पर्य यह है कि

'एक आदमी कुल्हाड़ीसे हमारा दाहिना हाथ काट रहा है और एक बायें हाथपर चन्दन लगा रहा है। उस चन्दन लगानेवालेको मत देखो। उस कुल्हाड़ीसे काटनेवालेको मत देखो। दोनोंके भीतर जो प्रभु है, उसको देखो'।

जीवनकी तीन सम्पदाएँ हैं, ऐसा महाभारतमें जो सनत्सुजात-गीतामें लिखा है। महाभारतमें १८-२० गीताएँ हैं उसमें अनु-गीता है, 'मंकि-गीता है, ब्रह्म-गीता है। एक सनत्सुजात-गीता है। उसमें ऐसा बताया कि—**प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि** (उद्योग-पर्व ४२.४)। यह जो हमारे जीवनमें प्रमाद है, असावधानी है, उसीका नाम मृत्यु है। जिस समय हम प्रमादमें हो जाते हैं, हमें अपने कर्तव्यका स्मरण नहीं रहना, जिसकी आज्ञामें सूर्य, चन्द्रमा चल रहे हैं, उसका ध्यान नहीं रहता। जो हमारे जीवनमें शक्ति दे रहा है उसका ध्यान नहीं रहता। प्रमाद आया तो मूल उत्ससे माने उद्गमसे—जैसे गङ्गोत्तरीसे गङ्गाजी चलती हैं तो जहाँ गङ्गोत्तरीको धारासे संलग्न जलधारा होगी वहाँ तो उसको गङ्गाजी कहते हैं और जहाँ उस मुख्य धारासे अलग कोई जल गड्ढेमें रह जाता है तो शास्त्रकी दृष्टिसे उसे सुरातुल्य अर्थात् शराबकी तरह मानते हैं। उसमें स्नान करनेपर पुण्य नहीं होगा। पुण्य तो उसी धारामें स्नान करनेका होगा जो गङ्गोत्तरीसे लगातार संलग्न है।

मनुष्यका यह जीवन जिस गङ्गोत्तरीसे चला है, जोवनकी धारा भी एक गङ्गोत्तरीसे चली है, यह भी भगवान्के चरणा-रविन्दसे ही प्रवाहित हुई है। यदि वहाँसे अपने जीवनका सम्बन्ध जुड़ा रहा तब तो यह गङ्गा है और यदि उससे सम्बन्ध टूट गया तो जैसे सम्बन्धसे मुक्त गङ्गाजल सुरा-जलके समान हो जाता है—वैसे ही यह जीवका जीवन भी अपवित्र हो जाता है। जहाँ परमेश्वरके साथ सम्बन्ध टूटा—यह अपवित्र हो गया।

सनत्सुजात-गीतामें तीन बात हमारे जीवनमें रहनी चाहिए, यह बताया। ब्रह्मसे हम एक हैं—जुड़ा हुआ है हमारा विस्तार। चित्तवृत्तिमें समता है—जो हुआ सो ठीक, जो हो रहा है सो ठीक—'नानक है भी सच, नानक होसी भी सच।' जो है सो भी सच है और जो होगा सो भी सच है। है शान्ति, रहेगी शान्ति—देखो उस परमात्माको देखो। उसके साथ सम्बन्ध नहीं टूटे। तत्त्वोंमें एकता है, चित्तवृत्तिमें समता है और व्यवहारमें असंगता है। कहीं फँसे नहीं—हाथ वहीं तक डालो जहाँसे खींच सकते हो। व्यापार भी करना हो तो ऐसा व्यापार करो कि कितनी भी मुश्किल आवे उसमें-से अपनेको निकाल सकें। अपनी क्षमता देख-कर ही व्यापारमें हाथ डालना चाहिए और केवल सम्भावनाओंपर हाथ डाल दिया कि फिर निकाल न सकें तो ठीक न होगा।

असंगता माने छुटकारा। कहीं भी हम फँस न जायें, कहीं भी आसक्त न हो जायँ—कहीं भी बँध न जायँ। निर्द्वन्द जीवन व्यतीत हो और सब स्थितियोंमें समान हों और परमात्मासे जो सम्बन्ध है वह जुड़ा रहे। जीवन तो वही है।

सुखं-दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।
अहिंसा-समता तुष्टिः........

शङ्कराचार्य भगवान्‌ने कहा है कि संसारी लोग, गृहस्थ लोग जो हैं—उनको स्त्री-पुरुषके सहवासमें जैसा सुख मिलता है, अच्छा भोजन करनेपर जैसी तृप्ति होती है और धन मिलनेपर जैसा सन्तोष होता है, उससे अधिक सुख 'आत्मरति'में होता है। **यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्** (३.१७)—आत्मा ही स्त्री-पुरुष है। आत्मा ही भोजन, आत्मा ही सन्तोष है। आप उस जीवनकी कल्पना तो करें। कितना स्वावलम्बी वह जीवन होगा, कितना स्वतन्त्र, स्वच्छन्द वह जीवन होगा जो धनके बिना सुखी है और

अच्छे भोजनके बिना भी तृप्तिका अनुभव कर रहा है। और स्त्री-पुरुषके सहवासके बिना भी अपने मनमें अपनी आत्मामें रह रहा है। पराधीनता तो वहाँसे कट गयी।

अहिंसा-समता-तुष्टिः।

किसीको तकलीफ न पहुँचायें, एक बात। यह हो गया जैन-धर्म—वे लोग अहिंसाका नाम बहुत अधिक लेते हैं। करुणा बौद्धधर्मकी प्रधानता है। उसमें करुणाका समुद्र उमड़ता है। बुद्धके जीवनमें एक बात आती है। उन्हें मुक्तिके द्वारपर ले जाया गया कि आप मुक्तिके राज्यमें प्रवेश करो। बुद्ध ठिठक गये। बोले—नहीं, मैं मुक्तिके राज्यमें प्रवेश नहीं करूँगा—क्यों, क्योंकि संसारके जीव इतने दुःखी हैं—उन सबको दुःखी छोड़कर मैं चला जाऊँ ! प्रवेश नहीं करेंगे, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। समाधि छोड़कर उनकी आँखोंमें आँसूकी धारा बह रही है। संसारके जीवो ! तुम दुःखमें, सुखमें, रागमें, भोजनमें हँस रहे हो—आओ-आओ, इनसे मुक्त हो जाओ।

अहिंसाकी प्रधानतासे जैन-धर्म, करुणाकी प्रधानतासे बौद्ध-धर्म और हितकी प्रधानतासे वैदिक धर्म है। कभी कठोरता करनी पड़े तो कठोरता भी कर लिया और करुणा करनी पड़े तो करुणा भी कर लिया लेकिन हित-भावना दोनोंमें रहे। कभी हिंसा भी-कभी अहिंसा भी—यह वैदिक धर्मकी विशेषता है। आवश्यकता पड़नेपर हिंसा भी—राष्ट्रकी रक्षा करनी हो, गरीबकी रक्षा करनी हो, धर्मकी रक्षा करनी हो तो वहाँ हाथ-पर-हाथ धरकर बैठना नहीं चाहिए। जिसमें लोगोंका कल्याण हो वह करनेके लिए हिंसा भी ठीक है, अहिंसा भी ठीक है और समता भी ठीक है, विषमता भी ठीक है। सन्तोष भी ठीक है और असन्तोष भी ठीक है। विद्या और अर्थ प्राप्त करनेमें सन्तोष नहीं चाहिए।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।

असन्तोष, धर्म करनेमें—और करें, और करें, और करें। उसमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना। विद्या प्राप्त करनेमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना। धन प्राप्त करनेमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना; लेकिन यह बात है—आत्मस्थिति-तुष्ट। हितप्रधान हमारा वैदिक धर्म है। उसमें सन्तोषके लिए भी स्थान है और असन्तोषके लिए भी स्थान है। उसमें हिंसाके लिए भी स्थान है, विषमताके लिए भी स्थान है। परन्तु क्यों, बोले—हितदृष्टि रहनी चाहिए। जिसमें सबका भला हो, वह दृष्टि चाहिए। **अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपो, दानं, यशोऽयशः।** अपने इन्द्रियोंका संयम करो। विवेकपूर्वक जीवन व्यतीत करना और दान करना।

दानके बारेमें तो जैसी बात वेदोंमें है—अद्भुत है। **श्रद्धया देयम्** (तै० उप० १.११.३) श्रद्धासे दान करो। **अश्रद्धया देयम्**—अश्रद्धासे भी दान करो। **ह्रिया देयम्**—शरमसे भी दान करो। **भ्रिया देयम्**—भयसे भी दान करो—**संविदा देयम्**—जान-बूझकर दो। अनजानमें दो—लज्जासे दो—देना, क्योंकि लेना-देनाकी शिक्षा तो मनुष्य अपने आप ही प्राप्त कर लेता है, उसके लिए तो कोई पाठशाला बनानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। बच्चे पाठशालामें पढ़े बिना ही सीख लेते हैं, लेकिन देना सिखानेके लिए तो लोगोंने पाठशाला भी नहीं बनायी कि इसमें दान करनेकी, देनेकी शिक्षा दी जाये। असलमें मनुष्यके लिए दान सर्वोपरि है।

बृहदारण्यक उपनिषद्में यह कथा आयी है। (५.२)—दैत्य गये ब्रह्माजीके पास—बोले क्या करें? बोले 'द-द-द' दया करो। तुम लोग बड़े क्रूर हो—दया करो। देवता गये ब्रह्माजीके पास

क्या करें? बोले 'द-द-द' दान करो। अपनी इन्द्रियोंका दमन करो। मनुष्य गये—बोले क्या करें? बोले 'द-द-द' दान करो। तीन दकार हैं। दैत्य हिंसक हैं इसलिए उनके जीननमें दया आनी चाहिए। देवता भोगी हैं, उनके जीवनमें दम आना चाहिए और मनुष्य लोभी हैं, उनके जीवनमें दान आना चाहिए। कुछ-न-कुछ देते चलो।

मनुस्मृतिमें ऐसे कहा कि अपने घरमें कोई आजाय—अपने घरमें अच्छा फर्नीचर न हो—कोई बात नहीं, चटाई बिछायें—कुशासन तो है। अगर वह भी न हो तो धरतीपर हाथ फिरा दिया। आइये यहाँ बैठ जाइये। कुछ खानेको देनेके लिए न हो तो थोड़ा-सा जल दे दो। जल भी न हो—

वाक्चतुर्थी च सूनृता।

आपके मुँहमें जीभ तो है न! मीठा बोलिये। अपनी जबानका शरबत—आपके मुँहमें तो अमृत भरा हुआ है। कुछ-न-कुछ देते आप चलते हैं। आपके जीवनमें जो क्रोध है, उसकी तन्मात्राएँ आपके शरीरसे निकलकर फैलती हैं। आपके जीवनमें जो लोभ है उसकी तन्मात्राएँ निकलती हैं। लोभीके संसर्गमें आनेसे मनमें लोभ आता है। क्रोधीके संसर्गमें आनेसे मनमें क्रोध आता है। कामीके संसर्गमें आनेसे मनमें काम आता है। आप तो बहुत कुछ देते चलते हैं, कुछ और भी देते चलिये। 'तपोदानम्', पर यह दान करनेकी वृत्ति आती कहाँसे है! अभिमानी मत बनो। कुछ अभिमान करने लायक नहीं है। न सुखी होनेका अभिमान, न दुःखी होनेका अभिमान। न कुलीनताका अभिमान, न मृत्युका अभिमान। मृत्युका भी अभिमान होता है—हम मरेंगे। कहाँ मरेंगे? अमुक तीर्थमें मरेंगे। उतान छाती करके—बन्दूककी

गोलीके सामने मरेंगे। देशहित के लिए फाँसीपर टँगकर मरेंगे। हमको तो भाई बहुत डर लगता है, हम तो बहुत निर्भय रहते हैं—सब आता है, पर देखना उसको है जो हमारे हृदयमें सद्भाव भेजता है।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।

वह साक्षी. वह प्रेरक, वह अन्तर्यामी है। आप गायत्रीका जप करते होंगे ! उसमें सीधा दोनोंका वर्णन है। एक ओर योग है। **भर्गो धीमहि सवितुः वरेण्यम्।** 'धीमहि' माने ध्यान करते हैं। ध्यान करते हैं माने योग कर रहे हैं। किसके साथ ? परमात्माके साथ। परमात्मा क्या कर रहे हैं ? **धियो यो नः प्रचोदयात्।** वह हमारी बुद्धिको प्रेरित कर रहा है। हम परमात्माका ध्यान कर रहे हैं और परमात्मा हमारी बुद्धिको प्रेरित कर रहा है। देवता लोग बुद्धिमें प्रेरणा, स्फुरणा देकर रक्षा करते हैं। इसमें साफ-साफ बात है—'तत्सवितुर्वरेण्यम्' हम परमात्माके उस तेजका ध्यान करते हैं—किस तेजका ? जो हमारी बुद्धिका प्रेरक प्रकाशक है। माने जो सम्पूर्ण विश्वका हेतु सविता है—ईश्वर है, वही हमारी बुद्धिका प्रेरक आत्मा भी है। जीव और ईश्वर दोनोंकी आत्मा एक है, यही तो गायत्री बोलती है। सृष्टिकर्ता है सविता देवता। देवता—स्वयं प्रकाश और बुद्धिप्रेरक है, हमारे देहमें बैठा हुआ। दोनों एक हैं—दोनोंमें समानाधिकरण्य है।

आओ परमात्माका दर्शन करें। कहाँसे देखें ? किसी मशीनमें कोई चीज बनती है तो मशीन फटाफट घूमती रहती है, वस्तुएँ निकलती जा रही हैं—उस मशीन चलानेवालेको देखो—और वह मशीन एक मिनटमें कितना चक्कर लगाती है, यह मत देखो—चलानेवाला कौन है ? **भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव**

पृथग्विधाः। सारे भाव जो हमारे हृदयमें आते हैं, उसके मूलमें परमात्मा आते हैं। और यह जो सारी सृष्टि बनी है—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (१०.६)

इस सारी प्रजाका मूल पिता कौन है? और सद्भावोंका प्रेरक कौन है? दो चीजें निकलीं, जो जिससे पैदा है और जो जिससे प्रकाशित होता है, वह अपने प्रकाशक और जनकसे पृथक् नहीं होता। यह सारी-की-सारी सृष्टि परमात्मामयी है, उसीकी रोशनीमें दीखती है और वही सारी सृष्टिमें हो रहा है। उसीका योग है और उसीका वैभव है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रवचन—५

(१४-११-८०)

श्रीमती भगवती गीता—गीताके विशेषण हैं—**गीताशास्त्रमिदं पुण्यम्**—गीता शब्द संज्ञा है। व्यवहारमें और परामर्शमें दोनोंमें भगवान् हैं। **मामनुस्मर युद्ध्य च** (८.७)। 'मामनुस्मर' परमार्थ है और 'युद्धय च' व्यवहार है। दसवें अध्यायमें परमार्थमें भगवान् योग हैं और व्यवहारमें भगवान् विभूति हैं। दो चीजें हैं। दसवें अध्यायका पाठ पहले हमने कितनी बार किया होगा। पर यह बात ध्यानमें नहीं आती थी। मेरे ध्यानमें नहीं आती थी, इसलिए मैं बार-बार इसको दोहराता हूँ। औरोंके ध्यानमें न आती हो तो वे भी ध्यान करें।

एतां विभूतिं योगं च—यह मेरी विभूति है और यह मेरा योग है। अर्जुनने प्रश्न भी किया है कि—**विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च** (१०.१८)। एक है योग और एक है विभूति। व्यवहार वैभव है, एक व्यक्ति है और उस व्यक्तिकी मूर्ति है। एक वस्तु है और एक वस्तुकी विभूति है। देखो मिट्टी वस्तु है और हीरा उसकी विभूति है—खानमें-से निकला हुआ मिट्टी ही है। पाषाण-खण्ड ही है, पत्थर ही है। मृत्तिका योग है और हीरा उसका विभूति है। जब हम परमात्माका चिन्तन करें तब देखें **मृत्तिकेत्येव सत्यम्**—(छान्दोग्य ६.१.४) केवल मृत्तिका ही सत्य है केवल परमात्मा ही सत्य है।

कल एक विलक्षण फूल देखा। बताया गया कि सालमें एक दिन खिलता है। कल खिला हुआ था। वह क्या है? उसमें मिट्टी है; उसमें पानी है। वह अपने तत्त्वसे वियुक्त नहीं हुआ है। युक्त है, योग है, मिट्टी-पानीका वैभव है; यह विभूति है कि वह इतने सुन्दर, सुगन्धित, रसयुक्त रूपमें है; उसमें सुकुमारता है। यह क्या है—यह मिट्टी पानीकी विभूति है। परमेश्वरकी जो सृष्टि है, सूर्य है, चन्द्रमा है, यह अग्नि है, यह वायु है। यह परमेश्वरकी विभूति है। जिसकी विभूति है उसको भूलना नहीं चाहिए।

विभूतिमें उसका दर्शन करते हुए विभूतिके साथ व्यवहार करना चाहिए। **रसोऽहमप्सु कौन्तेय** (७.८)—भूलनेकी वस्तु नहीं है। अग्निमें तेज भगवान् है। जलमें रस भगवान् है। पृथिवीमें गन्ध भगवान् है। ये व्यावहारिक हैं। व्यवहारमें भी भगवान्, परमार्थमें भी भगवान्। ये दसवाँ अध्यायका सार है, रस है, हमको पहले बहुत दिनतक ध्यानमें बात नहीं आयी थी। अब भगवान् कहते हैं—जितने आध्यात्मिक भाव हैं, और जितने आधिदैविक भाव हैं, वे सब-के-सब मुझसे ही होते हैं।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः—यह आध्यात्मिक भाव है हमारे हृदयमें। यह योग्यता जिससे प्रकाशित हो—विषयका भी ज्ञान हो और परमात्माका भी ज्ञान हो, उस ज्ञानकी योग्यताके रूपमें बुद्धि भी हो। फिर बुद्धिमें प्रकाश दिया और असंगता भी दी। यह भ्रम होता है कि हम फँस गये। कभी कोई फँसता नहीं। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई-बन्धु—जब वे अपने साथ थे तो संमोह था कि साथ ही रहेंगे। पर जब छूट गये तब कठिनाईसे, उनका स्मरण होता है। वह पिता जो गोदमें खिलाते थे, वह माता जो दूध पिलाती थी, गुरुजी जो बड़े प्रेमसे पढ़ाते थे—सब छूट गये। कहाँसे मोह हुआ? संमोह तो कहीं

हुआ ही नहीं। पति-पत्नीमें बड़ा मोह है, बड़ा प्रेम है, माता-पुत्रमें बड़ा प्रेम है—जब आप सोते हैं तो आपका मोह कहाँ जाता है? योग हो जाता है। उस समय आप परमात्मासे मिल जाते हैं।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः। (१०.५)

क्षमा सत्यं दमः शमः। (१०.४)

हमने देखा है—जो पहले शत्रु माने जाते थे वे मित्र हो गये। जो मित्र माने जाते थे वे शत्रु हो गये। बदलती है दुनिया। यह क्षमा है, सत्य है, दम है, शम है—आध्यात्मिक हैं। आध्यात्मिक माने जो हमारे शरीरके भीतर है। 'आत्मनि एव अध्यात्मम्'। जो हमारे शरीरमें ही होते हैं उनका नाम अध्यात्म है। यह लगता है कि इसने सुख दिया—इसने दुःख दिया, देता-वेता कोई नहीं, हमारे मनमें जो बैठा हुआ है, वही उभड़कर सामने आजाता है। सुख-दुःख भीतरसे निकलते हैं। बाहरसे नहीं आते। बाहर तो जिससे प्रेम हो उसकी मृत्युपर बड़ा दुःख हो और जिससे शत्रुता हो उसकी मृत्युपर दुःख नहीं होता; बल्कि कभी-कभी तो मुँहसे निकल जाता है—अच्छा हुआ। सबके मुँहसे नहीं निकलता। आप तो बड़े सज्जन हैं, आपके मुँहसे ऐसा शब्द नहीं निकलता लेकिन भीतरसे आजाता है।

भागवतमें ऐसा कहा गया है कि बिच्छू, साँप मर जानेसे सज्जन पुरुषको भी अच्छा लगता है। सुखं दुःखम् यह बाहरसे नहीं, आपके भीतरका विकास है। यदि आप अपने मनको, अन्तःकरणको संयमित कर लें तो सुख देनेवाला कोई दूसरा है, ऐसा समझ लें मोह नहीं होगा और दुःख देनेवाला कोई दूसरा है, यह समझकर किसीको द्वेष भी नहीं होगा। ये तो हमारे अन्तः-करणकी ऐसी ही बनावट है। देखो शीशेका स्वरूप। शीशा

चमकता है और कोयलेकी कालिमा प्रकट होती है और आतसी शीशेपर सूर्यका प्रकाश पड़ता है तो जल उठता है। उसपर रुई डाल दो—आग लग जाती है। यह वैभव है।

शीशेका वैभव दिखाता है कि आपकी नाक कैसी है, आपकी आँख कैसी है ? लेकिन इसका योग देखो, शीशेमें योग है। न तो तुम उसके भीतर घुसे और न तो पैदा हुए और न उसमें तुम्हारी लम्बाई-चौड़ाई है। न तुम्हारा उसमें दाहिना-बाँया है, न मुटापा है—न आगे-पीछे है। क्या विभूति है शीशेकी ! यह परमात्माकी विभूति है। यह दुनियाकी लम्बाई-चौड़ाई, इसका मोटापा, इसका आगे-पीछे, इसका छोटापन, इसका बड़ापन कुछ नहीं।

सुखं दुःखं भवो भावः।

देखो जन्म-मरण दीखता है—क्या विभूति है। बेटेका जन्म हुआ—केवल समाचार मिला। इसीसे फूल गये। झूठा समाचार मिला, किसी प्यारेकी मृत्यु हो गयी। दुःखित हो गये। है कुछ नहीं—आपके पैदा होनेसे पञ्चभूतका—धरतीका, पानीका, कुछ वजन बढ़ गया ? आपके मरनेसे पञ्चभूतका वजन कुछ घट गया ? सो रहा ज्यों-का-त्यों ! गणेशजी बने और मूर्ति बिगड़ गयी। मूर्ति बनी और बिगड़ गयी। इतना ही है; मिट्टीका योग है और मूर्ति उसकी विभूति है। जन्मना भी भगवान् मरना भी भगवान्। दूसरेको दुःख पहुँचानेसे डरें। दूसरेसे कड़वा बोलनेमें डरें। और निर्भय होकर सदाचारका पालन करनेमें भय काहेका ? यह तत्त्व-ज्ञान तीन ही चीज जीवनमें देता है।एक तो—

अभयं प्रतिष्ठां विदन्ते। (तै० उप० २.७.१)

जिसको तत्त्वज्ञान हो जाता है, वह सृष्टिमें निर्भय हो जाता है। कोई आओ, कोई जाओ। भगवान्की विभूति मजा लेनेके लिए

है। हमारे हृदयमें भय प्रकट होता है कि हम दुष्कर्म न करें। हमारे जीवनमें अभय प्रकट होता है—हम सत्कर्म करें। ये दोनों वृत्तियाँ भयकी, अभयकी सब भगवान्‌की दी हुई हैं। जरा देने-वालेको एक बार झाँक लें। आपके मनमें कोई भाव आवे तो **धियो यो नः प्रचोदयात्**को जरा देख लो। हमारी बुद्धिका प्रेरक जो है, उसको देख लें। एक बार उसकी ओर निहार लो। यह भेजनेवाला कौन है? अपना प्यारा है। चाँटा किसने लगाया? प्यारेने। ये चिकोटी किसने काटी? प्यारे ने। बस, इसीमें तो मजा है। दूसरी बात वेदान्त-जीवनमें देखना है—एक विज्ञानसे सबका विज्ञान। ऐसी कोई दूसरी विद्या नहीं है, किसी मजहबमें नहीं। हम चुनौती देते हैं—दुनियाका कोई मजहब बता दे एक विज्ञानसे सर्व-विज्ञानकी प्रक्रिया क्या है? यह उपनिषदोंके सिवाय और कहीं मिलती है? एकको जान लिया और सबको जान लिया।

तीसरी बात है—सर्वत्यागका सामर्थ्य! हमारे असंग स्वरूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिससे हम चिपके रहें। सब छोड़ सकते हैं। अभय पदकी प्राप्ति, एक विज्ञानसे सर्व-विज्ञान और सर्व-त्यागका सामर्थ्य। **भयं चाभयमेव च—अहिंसा समता तुष्टिः—** किसीको दुःख नहीं पहुँचाना—सबके प्रति समभाव रखना और मनमें संतोष रहना। हमारे जीवनमें यह विभूति है या नहीं, यह देखो।

तपोदानं यशोऽयशः—अपना काम करते चलो, यश-अपयशकी ओर मत देखो। अपयश-यश देखने लगें कि किस काममें लोग हमारी तारीफ करते हैं और किसमें निन्दा करते हैं—तब हम एककदम आगे नहीं बढ़ सकते। एक ही कामकी दस निन्दा करनेवाले मिलेंगे और दस तारीफ करनेवाले मिलेंगे। इसलिए दृढ़ निश्चयके साथ अपने जीवनमें आगे बढ़ना चाहिए।

कोई यश देता है ? भगवान् देते हैं, आदमी नहीं देता। कोई अपयश देता है ? भगवान् देते हैं, आदमी नहीं देता। अपयश सुनकर डरो मत और यश सुनकर खुश मत होओ। देनेवालेको देख-देखकर खुश होते जाओ। हर काममें उसको निहारते जाओ और खुश होते जाओ।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।

यह आध्यात्मिक भाव है। सृष्टि तो भगवान्ने बनायी ही है, वह तो हम आगे सुनावेंगे।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। (१०.८)

हमारे मनके भाव भी भगवान्के ही भेजे हुए हैं। अब देखो आधिदैविक भाव—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (१०.६)

ये सारे आधिदैविक भाव हैं। **महर्षयः सप्त**—जैसे हमारे शरीरमें सात इन्द्रियाँ हैं, आध्यात्मिक रूपसे ये सात ऋषि हैं। ऋषियोंको सात क्यों कहते हैं ? दो आँख, दो कान, दो नाक एक मुँह—ये सातों ज्ञानके देवता, ज्ञानके ऋषि, ब्राह्मणोचित स्थानमें हैं। मुख तो ब्राह्मण है न ! देवताका निवास कहाँ है ? विराट्के मुखरूप ब्राह्मणमें। सात ऋषि हैं और सात ही इनके देवता हैं। फिर अधिदैवमें ऋषि सात क्यों ? क्योंकि इनका जो बीज है, मूल कारण है वह भी सात है। वे प्रलयमें भी नष्ट नहीं होते हैं। जब प्रलय होता है तब मत्स्य भगवान् सप्तर्षियोंको नावपर बैठा लेते हैं। सभी वस्तुओंका बीज नावमें रख लेते हैं और प्रलयके समय विचरण करते रहते हैं।

ये सात ऋषि कौन हैं ? बोले—'पूर्वे' जो सबसे पहले रहते हैं—सबसे पहले रहते हैं का क्या मतलब है ? जितना भी आपको ज्ञान होता है—यह गन्ध है—यह गन्धवाली पृथिवी है। यह रूप है, यह रूपवाला तेज है—यह रस है, यह रसवाला जल है। यह स्पर्श है, यह स्पर्शवाला वायु है—ये शब्द हैं, यह शब्दवाला आकाश है। इनका प्रकाश करनेके कारण ऋषि, ऋषन्ति = जानन्ति इति ऋषयः। ये ज्ञान देते हैं। 'पूर्वे'का अर्थ हुआ धरती देखनेसे पहले और धरतीकी गन्ध सूँघनेसे पहले। देखनेसे पहले कौन होगी ? आँख। आँखके मूलमें जो ऋषि है—बड़ा तेजस्वी है। नाकके मूलमें जो ऋषि है—गन्धसौंध है, गन्ध ग्रहणमें बड़ा निपुण है। जो आदि सर्गमें पहले सात ऋषि हुए उनको भृगु आदि नामोंसे बोलते हैं। हर मन्वन्तरके सप्तर्षि नहीं; स्वायम्भुव मन्वन्तरके सप्तर्षि, आदि सर्गके सप्तर्षि।

चत्वारो मनवस्तथा। चार मनुके विषयमें तिलक महाराजने दूसरे ढंगसे लिखा है। ज्ञानेश्वरने दूसरे ढंगसे लिखा है। शंकराचार्यने दूसरे ढंगसे लिखा है। पर बाबा, उससे हमारा कोई ज्यादा मतलब नहीं है। सप्तर्षिमें कौन-कौनसे सात हैं, इसका पता तो महाराज, ऐतिहासिक लोगोंको लगाने दो। ये तो आधिदैविक भावकी चर्चा है। चौदह मनु होते हैं—चार क्यों ? चार मानस मनु हैं। स्वायम्भुव, रेवत, तामस—प्रियव्रतके तीन पुत्र हैं। उनकी उमर कितनी है ? तीन मन्वन्तरके तीन अधिपति होते हैं। तीनों प्रियव्रतके पुत्र हैं।

एक प्रश्न उठता है—एक मनुकी उम्र तीन मन्वन्तर, एक मनुकी उमर दो मन्वन्तर, एक मनुकी उमर एक मन्वन्तर और ये हैं एक ही बापके बेटे ? स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ये तीनों थे और अपने-अपने मन्वन्तरमें भी तीनों थे। ये कोई भौतिक व्यक्ति नहीं—

भगवान्के मानस भाव थे। अपने सङ्कल्पसे उनके मनुत्वकी स्थापना कर दी थी। और इतना विवेक है पुराणोंमें, इतिहासोंमें, वेदोंमें। सभी शास्त्रोंमें मनुका नाम आया है।

हमारे अन्तःकरणके चार भाग होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। ये हैं मनन करनेके कारण 'मनु'। इनके आधिदैविक रूपको जब हम ढूँढ़ते हैं तो चार-के-चार मिल जाते हैं। **मद्भावा मानसा जाताः**। भगवान् कहते हैं—ये सप्तर्षि मेरे भाव हैं—मेरे सङ्कल्पसे, मेरे मनसे पैदा हुए हैं। ये मनु कौन हैं ? मेरे भाव हैं। मेरे मनसे पैदा हुए हैं। **येषां लोक इमाः प्रजाः**—इन्हीं आधिदैविक भावनाओंकी शक्तिसे संसारमें सब लोग पैदा हुए हैं।

अन्तमें भगवान्ने फलश्रुति बता दी। **एतां विभूतिं योगं च**—यदि दोनोंको अलग-अलग नहीं मानोगे तो जो च का प्रयोग है वह व्यर्थ चला जायगा। **एतां विभूतिं योगं च**—यह विभूति और यह योग। पानी अपने स्वरूपमें है तब योग है और जब उसमें बरफ बन गया तब विभूति बन गयी। वस्तुओंको ठण्डा कीजिये, पानी ठण्डा कीजिये; उससे ठण्डो हवा लीजिये। अपने घरमें रखिये। पानी पानी है। वह योग है और जो बरफ बन गया—वह उसकी विभूति है। तेज तेज है। सूर्यकी रोशनी रोशनी है, सूर्य योग है—उसकी रोशनी विभूति। और जहाँ बरफको ताप लगा वहाँ बरफ फिर पानी हो गया। बरफको गला देना यह तेजकी विभूति है।

एतां विभूतिं योगं च—हम अपने पितामहके पास रहते थे। योग था वह। एक दिन उनसे अलग होकर रातमें कहीं गाड़ीपर जा रहे थे तो डाकुओंने घेर लिया। मैंने पुकारकर कहा—मैं अमुकका पौत्र हूँ। तो हाथ जोड़कर बोले—पालागी महाराज ! आप रातको क्यों अकेले आये ? घर पहुँचा दिया। यह हमारे

पितामहकी विभूति थी, वैभव था। एक प्रभव होता एक प्रभाव होता है। वह हमारे पितामहका प्रभाव था। **एतां विभूतिं योगं च।** हमें खूब दुःख हो रहा हो, भगवान् तो हमारे हृदयमें हैं। भगवान्के साथ तो हमारा योग है। अब इनका स्मरण कर लिया। स्मरण भगवान्की विभूति है। तुरन्त दुःख दूर हो गया। **हरिस्मृतिः सर्वं विपद्-विमोक्षणम्**—भगवान्के स्मरणमात्रसे ही सारे दुःख दूर हो जाते हैं।

यह तो आपको मालूम ही है कि मनमें दो बात एक साथ नहीं रह सकती। बारी-बारीसे होती है। हमारी आँख एक बार दो उँगली नहीं देखती है। एक बार एक, फिर दूसरी, फिर दूसरी—लेकिन बहुत ही जल्दी-जल्दी देखती है। नेत्र-वृत्ति इतनी त्वरासे एकसे दूसरीपर जाती है कि हम वह काल ग्रहण नहीं कर पाते हैं। एक साथ एक चीज रहती है। हमारे मनमें दुःख भी रहे और भगवान्का स्मरण भी रहे, यह नहीं हो सकता।

आप भगवान्के दुःखोंकी याद कीजिये। भगवान्को कम दुःख थोड़े ही हुआ। भगवान् भी कहीं पत्नीके लिए रोते हैं। कहीं बापके लिए रोते हैं। कहीं भाईके लिए रोते हैं। राम भगवान्के जीवनमें क्या रोना नहीं है? लक्ष्मणके लिए रोना है। सीताके लिए रोना है। रोते हुए भगवान्का स्मरण करो और तुम्हारा रोना बिलकुल मिट जायेगा। क्या बतावें आपको—लोगोंको सुनानेमें भी डर लगता है, सङ्कोच होता है कि किसीको अच्छा लगे, न लगे। हमने बच्चेके रूपमें भगवान्को देखा है। रोते हुए भगवान्को देखा है। दूध पीते हुए भगवान्को देखा है। चोरी करते हुए भगवान्को देखा है। छेड़छाड़ करते हुए भगवान्को देखा है। बँधते देखा है, भागते देखा है, हारते देखा है—और कड़वी बात बोल दें—मरते देखा है। डरनेकी बात नहीं है—सही-सही बात है।

भागवतमें तो लिखा है कि भगवान्का शरीर जलाया नहीं गया। योगाग्निद्वारा वह शरीर भस्म नहीं हुआ। पर महाभारतमें दग्ध होनेकी बात लिखी है—और जगन्नाथजीका तो सारा इतिहास ही इसी बातसे भरा है कि भगवान्का शरीर समुद्रमें बहता है। ये सारी-की-सारी विभूति है। और यह हमारे दुःखको दूर करनेके लिए विभूति है। हम दुनियाँमें जिस चीजको देखकर घबरा जाते हैं, उन रूपोंमें भी हम भगवान्को देख सकते हैं।

एतां विभूतिं च योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।

जो तत्त्व है इन रूपोंमें, उस तत्त्वको देखो, आकृतिको मत देखो। गांधीजो योग हैं तो नेहरूजी विभूति हैं। हमने जान-बूझकर नाम लिया, क्योंकि आज नेहरूजीका जन्म-दिवस है। भगवान्का यह भव है, यह विभूति है। ये ग्रह, नक्षत्र, तारे भगवान्के वैभव हैं। पाल ब्रटन एक विदेशी था—वह उड़िया बाबाजी महाराजसे बोला—महाराज कोई चमत्कार दिखाइये। कोई विभूति दिखाइये। बाबाने कहा कि देखो—एक बूँद पानी किसी पुरुषके शरीरमें-से टपक पड़ा और उसमें-से बना यह शरीर। यह चलता है, फिरता है, बोलता है—आगेकी बात सोचता है, पीछेकी याद करता है। बुद्धिमानीसे बड़े-बड़े काम करता है। तुमको अगर यह जीवन, यह शरीर चमत्कार नहीं मालूम पड़ता तो तुमको चिड़ियाकी तरह आसमानमें उड़कर दिखावें तब चमत्कार मानोगे ?

देखो यह आँखोंके सामने एक बूँद पानीका चमत्कार। इसमें मन भी है, इसमें बुद्धि भी है, इसमें इन्द्रियाँ भी हैं, इसमें भूत-भविष्यका ज्ञान भी है। इसमें वर्तमानकी सामग्री भी है। यह है ईश्वरका चमत्कार—यह नहीं मालूम पड़ता ? तत्वतः वस्तुके मूलको, रहस्यको पकड़ो। ऊपर-ऊपर तैर मत जाओ। लहराना विभूति है और शान्ति योग है। आप सोते हैं तो योग है। सपना

देखते हैं तो विभूति है। वह आपके मनकी विभूति है। हमको महात्माओंने समझाया कि तुम्हारे अन्दर एक ऐश्वर्य है। जागृतकी सृष्टि ईश्वर बनाता है। और स्वप्नकी सृष्टि तुम बनाते हो। वहाँ धरती है, वहाँ पानी है, वहाँ आकाश है, वहाँ मीलों लम्बा स्थान है, वहाँ बरसों लम्बा काल है, वहाँ अपने मित्र हैं, शत्रु हैं अपने मनका वैभव देखो !

इसने मित्रका रूप धारण किया, शत्रुका रूप धारण किया। दोनों लड़ने लगे। कौन लड़ रहा है ? तुम्हारा मन ही शत्रु और मित्र बनकर लड़ रहा है। यह मन योग है और ये शत्रु-मित्र बनकर लड़ाई करना या प्यार करना—ये उसकी विभूतियाँ हैं। व्यवहारको भी देखो, परमार्थको भी देखो। किसीकी एक आँख होती है। वह कभी दाहिनी आँखसे देखता है—कभी बाँयीं आँखसे देखता है। हमें कभी भगवान्‌का परमार्थ-रूप देखना है, कभी उनकी विभूति देखनी है। केवल समाधिमें डूब नहीं जाना, केवल व्यवहारमें फँस नहीं जाना।

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते।

हम दसवें अध्यायको विभूति-योग बोलते थे—जब ध्यान गया तो लगा अरे इसका नाम तो भगवान्‌ने विभूति-योग नहीं रखा है, इसका नाम तो भगवान्‌ने 'अविकम्प-योग' रखा है। **सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।** अविकम्प माने जो कभी कल्पित न हो, विचलित न हो। स्पन्दित न हो। यहाँ है अभी अपने घरमें; बम्बई है तो अपने घरमें, कलकत्तेमें हैं तो अपने घरमें, वृन्दावनमें हैं तो अपने घरमें—जिसका घर भगवान् है, वह जहाँ है वहीं अपने घरमें है कि नहीं ? यह अविकम्प-योग है। कभी अपने घरसे बाहर निकला ही नहीं। न जाग्रत्‌में, न स्वप्नमें, न सुषुप्तिमें, न समाधिमें, न व्यवहारमें—

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः यह हो गया अविकम्प-योग। हम रोते हुए भी भगवान्में हैं—हम हँसते हुए भी भगवान्में हैं। हम जन्मते हुए भी भगवान्में हैं। हम मरते हुए भी भगवान्में हैं। और लड़ते हुए भी भगवान्में हैं। जहाँ हैं वहीं भगवान्में। अविकम्प-योग, कभी भगवान् छूटता ही नहीं। **सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते।**

कुछ शङ्का रह गयी। बोले—मैं संशय मिटानेके लिए तो सब बता ही रहा हूँ। **नात्र संशयः।** क्या अर्जुन ! तुम समझते हो, मैं ध्यान करता हूँ तब ब्रह्म हूँ और घोड़े हाँकता हूँ तब ब्रह्म नहीं हूँ ? जब हम दोनों प्रेम करते हैं तब ब्रह्म हैं और जब आपसमें वाद-विवाद करते हैं तब ब्रह्म नहीं हैं ? **नात्र संशयः।** कोई संशय मत करो। कभी परमात्मासे अलग होते ही नहीं। अलग होनेका भ्रम है—वेदान्त आगया। अलग होना नहीं है। अलग होनेका भ्रम है। न प्रतीतिमें अलग होते हैं, न प्रतीतिको निवृत्तिमें अलग होते हैं। प्रतीतिकी निवृत्ति हुई तब भी परमात्मा और प्रतीति हो रही है, विश्वसृष्टि चल रही है—तब भी परमात्मा।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

श्रीमता भगवता गीता = श्रीमान् भगवान्ने इसका गान किया है। भगवता गीता = भगवद्-गीता—भगवान्ने गाया है, श्रीमती भगवती गीता भगवद्गीता ! वाणीमें भगवान् हैं; हमारी वाणीके भीतर बैठकर कौन बोल रहा है ? बोल रहा है वह योग है और जो वाणी बोल रही है यह भगवान्की विभूति है। यह वाणी योग है—शब्द विभूति है। **अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।** मैं सबका प्रभव हूँ। एक होता है प्रभव और एक होता है प्रभाव। प्रभव

योग है और प्रभाव विभूति। भगवान्‌ने पहले ही बताया कि दूसरे लोग नहीं जानते—मैं ही जानता हूँ।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

मैं सम्पूर्ण देवताओंका, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सबकी आदि मैं हूँ। और सम्पूर्ण ऋषियोंकी आदि मैं हूँ। परन्तु ये लोग मुझे जानते नहीं। आँख देखनेवालेको नहीं देख सकती। दूरबीन दूसरेको देखनेके लिए होती है, अपनी आँख देखनेके लिए थोड़े ही होती है?

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

किसी भी देवता या ऋषिको मेरे प्रभव, मेरी उत्पत्तिका पता नहीं है। उत्पत्ति हो तब न! मेरी उत्पत्ति नहीं है। फिर तो सब अज्ञान ही होगा क्यों?

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

भगवान्‌का जो जन्म है, उसको न कोई देवता जानते और न कोई ऋषि जानते, क्योंकि देवता और ऋषि जब नहीं पैदा हुए थे, जब आँख थी ही नहीं तब मैं था, जब कान था ही नहीं तब मैं था, जब जीभ थी ही नहीं तब मैं था—ये पट्ठे क्या जानेंगे हमको! ये तो अभी तीन दिनके बच्चे हैं और मैं अनादि माहावृद्ध, मुझसे बड़ा बूढ़ा दुनियामें और कोई नहीं। ये मुझे क्या जानेंगे! बोले महाराज, आप तो जानते हो? बोले अपनी उत्पत्ति हम भी नहीं जानते कि हमारा जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ, कैसे हुआ? पर सबका जन्म मुझसे हुआ, यह मैं जानता हूँ।

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

अहं सर्वस्य प्रभवः—यह तो योग और **मत्तः सर्वं प्रवर्तते**—यह है विभूति, सबको चलानेवाला। बिजलीका विश्वमें व्यापक होना यह योग है और पावर हाउसमें प्रकट होना यह विभूति है। और पावर हाउसमें बिजलीका होना योग है—बल्ब और पंखेमें, हीटरमें, रेफ्रिजरेटरमें प्रकट होना यह उसकी विभूति है। **अहं सर्वस्य प्रभवः**—**सर्वस्य**=जो कुछ गतिशील है उसका। सर्वं शब्दका अर्थ गतिशील होता है। सृ धातुसे ही सर्व शब्द बना है—जो भी बदल रहा है दुनियामें, जो भी अनेक रूपमें दिखाई पड़ रहा है—जो भी परिवर्तनशील है, जो भी ज्ञानका विषय है—सबका प्रभव-सत्ता, मूलसत्ता, सर्वोपरि सत्ता मैं हूँ और सबका प्रेरक भी मैं हूँ।

इति मत्वा बुधा भवन्ति। जब इस बातको जान लेते हैं तब वे ज्ञानी हो जाते हैं। और **बुधा इति मत्वा मां भजन्ते**। जो ज्ञानी पुरुष हैं वे ये बात जानकर मेरा भजन करते हैं। और **इति मत्वा बुधा भवन्ति**। जो ऐसा हमको जान लेते हैं वे ज्ञानी हो जाते हैं। ज्ञानीका लक्षण क्या है? उनकी पहचान है—**मां भजन्ते**—जहाँ देखते हैं—ज्ञानी पुरुषकी नजर ही भगवान्पर होती है—आप ऐसे समझ सकते हैं। यहाँ सब स्त्री बैठी हैं। लेकिन यदि आपकी बेटी यहाँ बैठी हो तो आप उसको स्त्री नहीं समझेंगे। बेटी समझेंगे। माँको स्त्री नहीं समझेंगे। उसमें आपका भाव, आपका संस्कार जुड़ गया। उसमें स्त्रीत्व मात्र ही नहीं है। उसमें पुत्रीत्व है, उसमें मातृत्व है, उसमें पत्नीत्व है। वह कहाँ से आगया? आपके हृदयमें-से ही निकलकर गया। स्त्रीत्व तो ईश्वरसे और मातृत्व, पत्नीत्व, पुत्रीत्व गया है आपके हृदयमें-से। तो चीज जुड़ गयी और आप जब देखेंगे अपने हृदयका भाव, आप स्त्रीको नहीं देखेंगे।

यह जो बुध है, इसके विषयमें कुछ समझना है—बुध माने

संसारके संस्कारसे मुक्त बुद्धिवाले बुध हैं—ज्यों-के-त्यों बुध हैं। बुध सोमका पुत्र है; अतः बुधमें सोमका सोमत्व—अमृत आगया और आनन्दका पुत्र जो बुध है, वह केवल ज्ञानका पुत्र नहीं है—आनन्दका पुत्र है। हम सच्चिदानन्दके पुत्र हैं। हमारा पुत्र सत्का पुत्र है। हमारा जनमा चित्का पुत्र है। हमारा रस आनन्दका पुत्र है। हम सच्चिदानन्दके पुत्र हैं और आत्मा वै पुत्र नामासि। हम सच्चिदानन्द हैं। **भजन्ते भावसमन्विताः।** भाव वह है जो आनन्दसे भरपूर है, जिसके जन्म-मरणका कोई भय नहीं है। और भावसे भगवान्में जुड़ गया।

गीताका यह प्रसङ्ग बड़ा आनन्ददायक है। अब यह है कि यहाँ बैठकर व्यापारकी बात सोचोगे तब तो आनन्द नहीं आयेगा। उसको थोड़ी देर आफिसमें छोड़ दो। क्या हो गया संसारके भोगमें। संसारके भोगमें क्या सुख होगा? बच्चे जब खेलमें लग जाते हैं तो उनको माँ-बाप भी भूल जाते हैं। आओ, भगवान्में लगो। 'रमन्ति' रम गये।

इसको व्याकरणके जो पण्डित हैं वे कहते हैं 'रमन्ति' नहीं बनता है। 'रमन्ते' होता है। आत्मनेपदी धातु है। भगवान्ने अपशब्द भाषण किया। 'रमन्ति' क्यों कहा? तो तुरन्त काशीका पण्डित बदल देता है। **तुष्यन्ति चरमन्ति च।** चरमन्ति-चरमाम् अवस्थाम् अनुभवन्ति—बस-बस, इसके आगे—आगे और कुछ नहीं—चरम अवस्थाका अनुभव। 'च' बादमें भी है। दो 'च' होना भी ठीक नहीं है। और 'रमन्ति' भी ठीक नहीं है। एक पण्डितने कह दिया 'गौरीशंकराभ्यां नौमि'—अशुद्ध हो गया। 'गौरी-शंकराभ्यां नमः' होना चाहिए—बोले अशुद्ध नहीं है शुद्ध है—'गौरीशं कराभ्यां नौमि'—शुद्ध हो गया। ऐसे पण्डित लोग करते हैं 'चरमन्ति च'। आओ रम जाओ!

सन्तोषका अनुभव करो, दुनिया नहीं चाहिए और रम जाओ इस परमात्मामें रमनेका उपाय क्या है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्।

एक बार आओ, भगवान्के इस अमृतमय समुद्रमें, इस ज्ञानकी गङ्गामें, हृदयके आनन्दके फुहारेमें—एक बार स्नान करो।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रवचन—६

(१५-११-८०)

सबके पिता हैं परमेश्वर, स्वामी हैं परमेश्वर और गुरु हैं परमेश्वर—जैसे पितासे पुत्र होता है और पिता पुत्रकी शिक्षाकी व्यवस्था करता है, और उसपर नियन्त्रण भी रखता है कि यह ठीक-ठीक चले। वैसे इस सम्पूर्ण विश्वका, जीवका, जगत्का पिता है परमेश्वर, शिक्षक है, गुरु है परमेश्वर और शास्ता, अन्तर्यामी है परमेश्वर। जो जीव परमेश्वर-भजन, उसकी सेवा नहीं करता है वह अपने स्थानसे च्युत हो जाता है। भगवान्‌ने जो मनुष्यका शरीर दिया है—जो स्थान दिया है, वहाँसे उसको नीचे जाना पड़ता है।

> य एषां पुरुषं साक्षाद् आत्मप्रभवमीश्वरम्।
> न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥
>
> (भागवत ११.५.३)

लोग कहते हैं—परिवारमें एकता रहनी चाहिए, परिवार सङ्गठित रहता है, धनवान रहता है। फिर लोग कहते हैं गाँव सङ्गठित रहना चाहिए। प्रान्त, जिला, सङ्गठित रहना चाहिए। एक आचार्यको माननेवाले राष्ट्र नहीं, विश्व मात्र मानवता सङ्गठित रहनी चाहिए। एकताका बड़ा महत्त्व है। पर उस एकताका आधार क्या है? प्रान्त, राष्ट्र भौगोलिक हैं। आचार्यका आधार साम्प्रदायिक है। राष्ट्रीयता दूसरे राष्ट्रका विरोध करती है। एक ईश्वर ही ऐसी वस्तु है जो हम सब लोगोंका अन्तर्यामी, स्वामी, शिक्षक, पिता है; हम सब एक पिताकी सन्तान हैं। यह संघटनका सबसे बड़ा आधार है। अपनी पिताकी सेवाके लिए, पतिकी

सेवाके लिए, गुरुकी सेवाके लिए ईश्वरकी सेवा आवश्यक है और ईश्वरको पहचानते हैं, वे बुधा भावसमन्विताः।

भाव शब्दका अर्थ आप समझते तो हैं ही पर भावकी आवश्यकता तब पड़ती है जब दीखता हो कुछ और उसमें भावना की जाय कुछ—जैसे शालिग्रामकी शिला है। वैज्ञानिक रीतिसे आप उसकी परीक्षा करेंगे, तो वह भी एक खास तरहका पत्थर ही निकलेगा। परन्तु उसमें भाव किया जाता है कि यह साक्षात् विष्णु है। पति, गुरु, पिता भी मनुष्य दिखते हैं—और उसमें भाव किया है परमेश्वरका। जब आप यह जाँच करने जायेंगे कि यह परमेश्वर है कि नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगेगा—ठन-ठन गोपाल। लेकिन हमारे हृदयमें ईश्वरका भाव है। जिस हृदयमें ईश्वरका भाव है उस हृदयका अत्यन्त उत्तम कोटिका निर्माण होता है; शालिग्रामकी शिला ईश्वर हो तो या न हो, चतुर्भुज मूर्ति ईश्वर हो या न हो, पति, गुरु ईश्वर हो या न हो। जिसके हृदयमें ईश्वरका भाव होगा वह भाव ही ईश्वरका निर्माण कर लेगा।

यह बात समझनी है कि कोई वस्तु ज्यों-की-त्यों दिखेगी तो भाव बनानेकी क्या जरूरत है? वह तो आँख ही देख रही है। आँखसे दीख रहा है दूसरी तरहका और हमारा हृदय बन रहा है—उत्तम-से-उत्तम सर्वोत्तम। यह अध्यात्म-विद्या, हृदयके निर्माणकी विद्या है, वस्तुके निर्माणकी विद्या नहीं है। आप लोहा बनाइये, आप कपड़ा बनाइये, आप सीमेंट बनाइये, जो मौज हो सो बनाइये। बाहरकी चीजोंको बनाना दूसरा है और अपने हृदयको बनाना दूसरा है।

यह जो हमारी अध्यात्म-विद्या है, यह हृदयको बनानेकी विद्या है—वस्तुओंको बनानेकी नहीं। इसलिए विद्वान् पुरुष अपने

हृदयमें भाव करते हैं। दीख रहा है पीपलका पेड़ और हम भाव करते हैं कि यह साक्षात् वासुदेव हैं। पीपल तो पीपल ही रहेगा और हमारा हृदय वासुदेवाकार हो जायेगा। हम अपने हृदयमें भगवान्‌का दर्शन कर सकते हैं। यही भाव जब याद होता है तब हृदयमें परमात्माका दर्शन होता है। इस भावका व्याख्यान दें— इसे विस्तार कर सुनावें।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(१०.९.११)

शीशेमें जो आप अपनेको देखते हैं वह आपका स्वरूप नहीं है। **यो यत्श्रद्धः स एव सः।** आपकी श्रद्धा किसपर है? आपका प्रेम किसपर है? आप किसकी याद करके तन्मय हो जाते हैं? आपका स्वरूप वही है।

मुखड़ा क्या देखे दरपनमें तेरे दया धरम ना तनमें।

एक गुप्त रहस्य आपको सुनाता हूँ—वह यह है कि आपके मनमें क्या है? यदि आपका मन सूअरका ही चिन्तन कर रहा है तो मन शूकराकार हो गया है और आपका मन ही जब शूकर हो गया तो आपका बाहर जो वेश है, भूषा है, उसकी क्या कीमत है। सबसे बड़ी बात है अपने हृदयको बनाना। अपने हृदयका निर्माण। और हृदयका निर्माण करनेके लिए भावकी आवश्यकता है।

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

गीतामें चित्तकी व्याख्या है। वैसे एक सन्तने हमको गीतापर दो टीका दी थी। एकका नाम था सर्वविमर्श और एकका नाम था स्वप्रकाश टीका। अपनेको कहीं फिर बादमें देखनेको नहीं मिली। स्वयं विमर्शका अर्थ है कि गीतामें गीताके शब्दका अर्थ ढूँढ़ो। उसमें ढूँढ़-ढूढ़कर बताया गया। 'मच्चित्ताः' चित्त किसको कहते हैं ? गीतामें ढूँढ़ते हैं।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥
(१२.८.९)

भगवान्ने कहा कि मुझमें अपना मन रख दो और मुझे अपनी बुद्धि दे दो। और फिर बादमें कहा कि 'अगर तुम अपना चित्त मुझमें समाहित नहीं कर सकते तो'—इसका अर्थ हुआ कि मनका प्यार और बुद्धिका विचार, दोनों जब भगवान्में लगेगा तब हम यह कहेंगे कि हमारा चित्त भगवान्में लग गया। 'मच्चित्ता'में जो चित्त शब्द है उसकी व्याख्या बारहवें अध्यायमें मिल गयी। चित्त माने प्यार भी भगवान्से और विचार भी भगवान्का। थोड़ी देरके लिए हम आपको कुरुक्षेत्रके युद्धसे हटाके दूसरी ओर ले चलते हैं।

श्रीकृष्ण-अर्जुनका संवाद है। वैसे भागवतमें तो यह शैली अपनायी गयी है कि भीष्म पितामह शरशय्यापर सो रहे हैं और उनका मन है श्रीकृष्णकी रासलीलामें (दे० भा० १.९. ३२-४२)

शरशय्यापर पड़े-पड़े भीष्म सोच रहे हैं—क्या ललित-ललित चाल है ! क्या विलासपूर्ण चेष्टा है ! क्या मधुर मुसकान है ! क्या प्रेम-पूर्ण चितवन है। गोपियोंके सामने आये और बोले पागल हो गयीं ? ऐसी प्रेमान्ध हो गयीं गोपियाँ कि श्रीकृष्ण जैसी चेष्टा करते थे वे भी वैसी चेष्टा करने लगीं। वे भी चलने लगीं। वैसे ही बोलने लगीं। वैसे मुस्कराने लगीं। मनमें कृष्ण ऐसे भर गये कि इनका शरीर भी कृष्णके अनुकरणमें लग गया। वह गाँवकी गँवार थीं। लेकिन श्रीकृष्ण हो गयीं। श्रीकृष्णकी जो प्रकृति थी वही प्रकृति गोपियोंकी हो गयी।

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म गोपियोंकी तन्मयताका स्मरण कर रहे हैं। उस समय भीष्म क्या है ? उस समय भीष्म कृष्ण हैं। उस समय भीष्म गोपी हैं ? मन ही सब कुछ है। मन एव **मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।** बन्धनका कारण मन है। मुक्तिका कारण मन है। जिसके मनमें जो भरा है, वह वही है। बाहरके खोलका महत्त्व नहीं है। सारा महत्त्व है मनका। उसीमें सुख है, उसीमें दुःख है। उसीमें प्रेम है, उसीमें द्वेष है। बाहरकी बातें आपके मनको कितना प्रभावित कर लेती हैं, इसपर ध्यान दें। हम 'मच्चित्ताः'की बात करते हैं—भागवतमें शुकदेवजीने गोपियोंका वर्णन किया। आप लोग सुन तो रहे हैं—गीता, पर अब मैं सुनाने लगा हूँ भागवत। कभी-कभी स्वाद बदल जाना चाहिए। कभी करेलेका साग मिलता है खानेको तो कभी सेवका हलवा मिलता है। शुकदेवजीने गोपियोंका वर्णन किया—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागराणि सस्मरुः॥ (१०.३०.४३)

गोपियोंका मन हो गया कृष्ण; गोपियोंकी वाणी हो गयी कृष्ण; गोपियोंकी चेष्टा हो गयी कृष्ण; गोपियोंकी आत्मा हो गयी कृष्ण;

कृष्णका गुण गाते-गाते अपने शरीरको भूल गयीं, अपने घरको भूल गयीं। उनका मन कृष्णाकार हो गया। शुकदेवजीने गोपीका वर्णन ऐसा किया।

गोपियोंके मनमें कृष्ण है, प्राणमें कृष्ण है, कृष्णके लिए उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है। और अपने मनसे कृष्णके पास आगयीं हैं और अपने आत्माके रूपमें कृष्णका अनुभव करती हैं। इसीको बोलते हैं 'गोपी'। 'गो' माने इन्द्रियाँ और 'प' माने होता है, पीनेवाला। इन्द्रियोंसे जो भगवद्रसका पान करे बोलते हैं गोप—**गोभिः पिबन्ति इति गोपाः तेषां पत्न्यः गोप्यः।** योगी ध्यानमें ईश्वरका आनन्द लेते हैं और व्रजवासी इन्द्रियोंमें ईश्वरका आनन्द लेते हैं। गोकुल माने सब इन्द्रियोंसे—कानसे कृष्णको सुनें, त्वचासे कृष्णको छूएँ, आँखसे कृष्णको देखें, नाकसे कृष्णको सूँघें, जीभसे कृष्णको चाटें—हृदयसे श्रीकृष्णका आलिंगन करें। व्रजवासियोंकी समग्र इन्द्रियाँ, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ श्रीकृष्णमें लग गयी हैं।

मच्चित्ताः—गोपी देखती है हरिणीको—तो उसका ध्यान होता है, इसकी ये बड़ी-बड़ी आँखें कृष्णको देखनेके लिए हैं। वे देखती हैं गायको प्रसन्न—श्रीकृष्णका स्मरण करके प्रसन्न हो रही है। वे देखती हैं धरतीपर दूर्वा—श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे यह रोमञ्च हो रहा है। वे देखती हैं वृक्ष और स्मरण करती हैं कृष्णको जो वृक्षके नीचे लटक रहा है। इससे मधुधाराका क्षरण हो रहा है। यह कमल खिल रहा है—कमलनयन-कमलनयन-कमलनयन। कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण! **मच्चिता मद्गतप्राणाः**—यह एक सृष्टि ही दूसरी है। यह भक्तकी सृष्टि है। यह कमाईका सुख नहीं है। यह संग्रहका सुख नहीं है। यह भोगका सुख नहीं है। यह अपने बड़प्पनका सुख नहीं है। यह अपने भावका सुख है। एक बार अपने भावमें मग्न हो जायँ। गोपी देखती है गिरिराजमें झरना बह रहा है! बोले—

श्रीकृष्णका पाँव पखारनेके लिए देखती हैं—यहाँ खड़िया मिट्टी है कि गेरू है—तो श्रीकृष्ण जब नटका वेष बनाते हैं, तो यह है उनका शरीर रँगनेके लिए। फूल खिले हैं। वे उनके शृङ्गारके लिए हैं। ये मणि हैं—उनके शृङ्गारके लिए। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको देखकर गोपीका मन कृष्णकी ओर न जाता हो।

जब वह जमुनाका तट देखती है—मन वही हो जाता है। आपको न भाता हो तो हम कहते हैं कभी-कभी आप पिकनिक भी तो करते हैं न ! आप अपने घरमें रहिये—अपने ढंगका खाइये, पीजिये, मौज कीजिये पर कहीं कभी जंगलमें भी हो आइये। कभी पहाड़में भी हो आइये। कभी अपने मनको भी पिकनिक करा दीजिये। ले चलिये 'मन वै जात अजौं···वा जमुनाके तीर'—अपने मनको वर्तमान शृङ्खलाओंसे—वर्तमानमें जो जंजीरें हैं, उनसे थोड़ी देरके लिए निकालिये। गोपीका मन कैसा है ? श्रीकृष्णको हृदयसे निकाल देनेके लिए योग कर रही है गोपी। योगी लोग चाहते हैं कि हमारा मन भगवान्‌में लग जाय और योगाभ्यास करते हैं; गोपी योगाभ्यास करती है—घरका काम नहीं हुआ—इस कारे कृष्णको अपने मनसे निकाल दें। आओ प्राणायाम करके निकाल दें। मयूरकी पाँख कहीं पड़ी हुई मिल गयी—शरीर काँप गया। भूसीका दाना कहीं दिख गया, आँखोंसे आँसू बहने लगे। यह क्या चमत्कार है ? यह चमत्कार है कि हमारा चित्त कृष्णमय हो गया।

> **मच्चिता मद्‌गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्।**
> **कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥**
> **तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**

मत्प्राणाः—गोपियोंका प्राण कहाँ है ? उनका जीवन क्या है। गाँधीजीसे किसीने कहा—मरनेका समय आरहा है रामका

नाम ज्यादा लो। गाँधीजीने कहा राम-नाम तो हमारी खुराक है। उसके बिना तो मैं जी नहीं सकता। राम-राम तो हमारी साँसमें भरा है। हमारा प्राण है। जैसे भोजनके बिना मनुष्य नहीं रह सकता, वैसे राम-नामके बिना मैं नहीं रह सकता। गोपी कहती है—देखो तो सही, हमारा प्राण तो तुममें रहता है, तुम्हीं हमारे जीवन-सर्वस्व हो, गोपी बोलती है—तुम्ही हमारी आयु हो—तुम्ही हमारे जीवन हो—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
(१०.२९.३४)

तुमने हमारा मन चुरा लिया, लूट लिया और आसानीसे लूट लिया। कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा। नूपुर बजाकर लूट लिया। बाँसुरी बजाकर लूट लिया। अपना सौन्दर्य दिखाकर लूट लिया। अपनी सुगन्धसे लूट लिया, तुमने हमारा मन।

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण नाम सुना—'कृष्ण नाम जब तें श्रवण सुन्यो री आली, भूलीरी भवन हौं तो बावरी भई री।' रोज गीता सुनते हो—यह गीता है **मच्चिता मद्गतप्राणाः।** गोपी कहती है हम तुम्हें ढूँढ़ लेंगे। तुम हो हमारे प्राण! हमारा प्राण खो गया—साँस बाहर निकलती है और निकलकर फिर आती है। प्राणका नियम तो यही है। निकल जाये और लौटकर आवे नहीं तो मृत्यु हो गयी न! अरी गोपियो, तुम हमारे विरहमें भी इस प्रकार ढूँढ़ रही हो, बोल रही हो, रो रही हो। हमने अपना प्राण तुम्हारे पास, तुम्हारे शरीरमें रख दिया है। अब मौत आती है ढूँढ़ने, विरहिणीको—इस विरहिणीको मार डालें। हमारे शरीरमें ढूँढ़कर देखती है मौत—प्राण तो मिलता ही नहीं। क्योंकि इस शरीरमें हो तो मौत निकालकर ले जाय। इस शरीरमें तो हमारे प्राण हैं ही नहीं। तुम्हारे शरीरमें हमारे प्राण रखे हुए हैं और हम तुम्हें वन-वनमें ढूँढ़ें—

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।
(भाग० १०.३१.१)

हमारी आँख हमारी आँख नहीं है । तुम्हारी आँख है । हमारा मन हमारा मन नहीं है—तुम्हारा मन है । जैसे अपने प्राण अपनेको प्रिय होते हैं । ऐसे जब तुम रातमें घूमते हो—हम तुम्हें अपने हाथसे छूती हैं तब डर लगता है कि हमारी कठोर उँगली तुम्हारे शरीरमें गड़ न जाय ! गुलाबकी पंखड़ी तुम्हारे सुकुमार शरीरमें लगकर कष्ट न पहुँचावे और तुम काँटेपर घूम रहे हो ? कंकड़पर घूम रहे हो ? हमारा माथा चकरा रहा है क्योंकि हमारी आयु, हमारे प्राण हमारे सर्वस्व तुम हो !

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।

जब भक्त चार बैठते हैं तो एक वक्ता बन जाता है, बाकी श्रोता बन जाते हैं—आप चार मित्र कभी बिना कामके भी मिलकर बैठते हैं तो क्या बात करते हैं ? मौसमकी बात करते है । रशियाकी बात करते हैं, अमेरिकाकी बात करते हैं, चाइनाकी बात करते हैं । आपको यह नहीं लगता कि हम बेकार बोल रहे हैं ? कभी आपके मनमें यह बात नहीं आती कि न तो हम चाइनापर आक्रमण करने जा रहे हैं, न तो रशियाकी शासन-पद्धति अपने देशमें चलाने जा रहे हैं । और न अमेरिकाके राष्ट्रपति होने जा रहे हैं । किस बातकी चर्चा ? किस बातकी चर्चा करते हैं आप ? एक दूसरेसे ऐसी चर्चा कीजिये कि उसका हृदय भी पवित्र हो, आपका हृदय भी पवित्र हो ।

आप अपने कपड़ेका ख्याल रखते हैं कि कोई दाग न पड़े । देखा है—एकके कपड़ेपर एक बूँद चाय गिर पड़ी, मेरे सामने । हमको पता नहीं वे श्रीमतीजी यहाँ है कि नहीं । वे बोलीं कि दस रुपये हमारे खराब हुए । आप इस सभामें अपने कपड़ेका

तो इतना ध्यान रखते हैं और शरीरपर कितना साबुन, कितना स्नो, कितना पाउडर लगाते हैं। एक जगह गया था वहाँ शरीरको दिव्य बनाया जाता था। मैंने देखा—पूछा कि आपके शरीरपर महीनेमें कितना साबुन खर्च होता है? जो साबुन लगाते हैं, उसीमें रंग होता है। उसीमें चिकनाई होती है। उससे सारा-का-सारा शरीर रंग जाता है। आप शरीरके लिए कितना समय, कितना श्रम, कितनी बुद्धि खर्च करते हैं? पैसेकी बात जाने दें। उसमें क्या रखा है? पैसा तो जहाँसे आता है वहीं जाता है। कोई हीरा-मोती लेकर आजतक न गया है, न आया है। धरतीमें ज्यों-का-त्यों रहता है—'मेरा-मेरा' मानते हैं चले जाते हैं। शरीरको अच्छा बनानेके लिए आप ध्यान देते हैं न! ध्यान रखना चाहिए। हम मना नहीं करते हैं।

आप अपने मनको अच्छा बनानेके लिए कितना ध्यान रखते हैं? आपका शरीर आप अच्छा रखिये। आपका कपड़ा आप अच्छा रखिये। पर आपके जीवनमें मन भी तो एक चीज है। और वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। अच्छे कमरेमें अच्छे पलङ्गपर सो रहे हों—रातको नींद टूटे और आपका मन बिगड़ जाय—सब कुछ बिगड़ जायगा। न कमरा अच्छा लगेगा, न पलङ्ग अच्छा लगेगा, न कपड़ा अच्छा लगेगा।

आपको सच्ची बात सुनाते हैं—एक लड़कीके शरीरपर हीरे फिट करनेके लिए कि कौन-सा आभूषण उसको ठीक बैठेगा, अमेरिकासे उसका जानकार बुलाया गया था बम्बईमें। उसके बाल ठीक करनेके लिए लन्दनसे बाल ठीक करनेवाला बुलाया गया था। यह मैं कल्पनाकी बात नहीं कर रहा हूँ। बनाया हुआ बाल मैंने हाथ लगाकर देखा। मैंने कहा—भाई, नाईके आने-जानेमें दस हजार खर्च हुए हैं लन्दनसे, तो उसने बाल कैसा बनाया है

वह मैं देखूँ तो सही ! मैंने उस लड़कीको बुलाकर उसके सिरपर हाथ रखकर देखा कि उसका बाल कैसा बना है ? शरीरका इतना ख्याल और आपका जो रत्न है, रत्नोंका रत्न है, हीरोंका हीरा है आपका मन, उसका ख्याल नहीं।

चार दीवाने इकट्ठे हुए। भगवान्‌की चर्चा चलने लगी। वे सुनते हैं, एक बोलते हैं। वे बोलते हैं, एक सुनते हैं। गोपियाँ इकट्ठी होती थीं—क्या बढ़िया, दो तीन जगह। गोपियाँ जो परस्पर बात करती हैं—उसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें है।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रूरधरार्पितवेणुम्।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

(भाग १०.३५.२)

वायें भागकी ओर उनका कपोल लटकता है। बाँहें फड़कती हैं। अधरोंपर बाँसुरी रहती है। हाथ बाँसुरीके छेदपर चलते हैं। उसमें-से स्वरलहरी निकलती है—तो ऐसे लगता है कि सम्पूर्ण विश्वका आलिङ्गन करते हैं। अपने हृदयसे सम्पूर्ण विश्वको लगा लेते हैं। भागवतमें दशम स्कन्धमें ऐसे प्रसंग बहुत हैं, जहाँ चार गोपियाँ इकट्ठी होकर कृष्णके विषयमें बात करती हैं। जैसे—गोपियाँ वीणा लेकर बैठ गयीं और उसपर श्रीकृष्णकी माधुरी, उनकी चातुरी, उनकी निपुणता, उनकी प्रेमभरी चितवन, उनकी अनुग्रह-भरी भौंहें, उनकी वह मन्द-मन्द मुसकान देखती जाती हैं और वीणापर गाती जाती हैं। 'लखी जिन लालकी मुसकान'—मनमोहन जाकी दृष्टि परत ताकी गति होत हैं'—और, 'और न सुहात भवन, तन, असन, बसन वन हीको धावत दौर-दौर मनमोहन जाकी दृष्टि परत।'

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
…………कथयन्तश्च मां नित्यम्॥

भागवतमें लिखा है कि भगवत्प्राप्तिका यही साधन है। वक्ता मिल जाय तो भगवान्‌को सुनो और श्रोता मिल जाय तो भगवान्‌को सुनाओ और दोनों न मिलें तो स्वयं गुनगुनाओ—सिनेमाका गीत नहीं। 'ग्वालिनी प्रकट्यो भूर न नेहु'। दधि भाजन सिर पे लिए कहत्ति गोपालहिं लेहु। उसके सिरपर है दहीका मटका और बोल रही है कोई गोपाल ले लो। कोई गोपाल ले लो। कोई दही लेगा—दही लेगा भूल गयी। 'दधिको नाम बिसर गयी ग्वालिन'। कोई कृष्ण लेगा, कृष्ण, कोई गोपाल लेगा-गोपाल—ऐसा बोलने लगी। इस प्रकार श्रीकृष्णके चरित्रमें, रामके चरित्रमें, भगवान्‌के चरित्रमें अपने मनको डुबो दो।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।

आप अपने सन्तोषको, होशको, सुखको दूसरोंके अधीन मत करो। आप अपने सुखका, संतोषका, ऐसा साधन रखो जो आपके अधीन हो। यही सुखकी परिभाषा है। हम सुख चाहते हैं। किसके लिए ? सुख हम चाहते हैं सुखके लिए। एक बार पत्र-पत्रिकाओंमें एक चर्चा चली थी, कला, कलाके लिए। कला, कलाके लिए नहीं होती—कला सुखके लिए होती है। धन सुखके लिए होता है। परिवार सुखके लिए होता है। जगह-जायदाद सुखके लिए होती है। परन्तु सुख किसके लिए होता है। सुख धन पानेके लिए नहीं होता, धन सुख पानेके लिए होता है। सुख पाकर हम किसी और चीजको पाना नहीं चाहते हैं। और चीज जब पाते हैं तब वह सुखके लिए पाते हैं। इसलिए दूसरी वस्तुकी इच्छाके अधीन सुखकी इच्छा नहीं है। बल्कि सुखकी इच्छाके अधीन दूसरी इच्छाएँ हैं।

दोष देखकर प्रेम घटता नहीं। गुण देखकर प्रेम बढ़ता नहीं। प्रेम गुणके अधीन नहीं है। दोष प्रेमको काट नहीं सकता। और

गुण प्रेमको बढ़ा नहीं सकता। दूर जानेसे न प्रेम घटता है, न बढ़ता है। देर होनेसे न प्रेम घटता है, न बढ़ता है और पराया हो जानेपर भी न प्रेम घटता है, न बढ़ता है। तुम उन ही-के रहो। यह जो स्वाधीन, स्वावलम्बन, स्वातन्त्र्य, परमसुख परमात्माके चिन्तनमें—परमात्माके ध्यानमें होता है, उसमें कोई पराधीनता नहीं। इसमें कुरसीकी जरूरत नहीं, पदकी जरूरत नहीं, धनकी जरूरत नहीं। अपने स्वयंमें अपने प्रेममें मगन हैं।

तुष्यन्ति च रमन्ति च। आपका आनन्द कहाँ है? आपका सुख कहाँ है? पहले हमारी नानी कहानी सुनाया करती थी—एक दैत्य था उसकी जान तोतेमें रखी हुई थी। वह दैत्य मरता नहीं था। जब पता लग गया कि उसकी जान कहाँ है—तोता मारा गया, तब दैत्य मरा। आपका सुख कहाँ है? आपने तो अपना सुख ही दूसरेके घरमें रख दिया। चाँदीमें रख दिया। सोनामें रख दिया। नोटके बण्डलमें रख दिया। आओ, भगवान्में रखकर देखो तो—'तुष्यन्ति'। भगवान्का स्मरण आवे और आनन्द आ जावे। शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है। भक्तिसे मन आनन्दित हो रहा है। आँखमें प्रेमके आँसू आरहे हैं। कण्ठ गद्‌गद हो रहा है। हृदय आनन्दसे भर रहा है। हमको तो एक क्षणका भी अवसर नहीं है कि हम किसीसे मिलें कि हम किसीसे जुलें कि किसीसे बात करें। कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण!

चलो तुम्हें मुक्तिके पास ले चलें। बोले, हमको फुरसत नहीं है। हमको मुक्तिमें जानेकी फुरसत नहीं है। हमें तो यहीं मुक्तिका परमानन्द मिल रहा है। यह जो भक्ति और वेदान्त है, यह मरनेके बादकी चीज नहीं है। इस विषयमें लोगोंको भ्रम है। यह तो मौलवी, पादरी, पुरोहित जो मजहबी मुल्ला लोग होते हैं—उन लोगोंने यह बताया कि मरनेके बाद स्वर्ग, बहिश्त मिलता है।

हमारा कोई आध्यात्मिक गुरु मरनेके वादकी चर्चा नहीं करते हैं। यहीं लो, जीवन-मुक्ति। भक्ति तृप्त आनन्द है—तृप्त माने इसी जीवनके आनन्दका नाम भक्ति है। इसी जीवनके आनन्दका नाम ज्ञान है। परन्तु ऐसा आनन्द जिसमें पराधीनता बिलकुल नहीं—जिसमें समयकी जरूरत नहीं, स्थानकी जरूरत नहीं, वस्तुकी जरूरत नहीं, किसीके अनुग्रहकी जरूरत नहीं—यह तो साक्षात् आनन्द है। **तुष्यन्ति च रमन्ति च।** इसीमें रम जाते हैं। इसीमें सन्तोषका अनुभव करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

तेषां सततयुक्तानां—मनकी वीणा बजाओ। यह बात सबको मालूम न हो। 'तत्' शब्दका संस्कृत भाषामें अर्थ होता है—वीणा, ताना-बाना जैसे कपड़ेमें होता है—तार-तन्त्री, तत् उसी धातुसे वनता है जिस धातुसे तन्त्री शब्द बनता है। 'सततम्' माने 'ततेन संहितम्' वीणासहित। उठाओ वीणा। मनकी वीणापर हृत्तन्त्रीके तार बज रहे हैं—उसमें कौन-सा स्वर बोल रहा है? उसमें सारा स्वर कृष्णका स्वर है। उनकी बाँसुरीसे मिलकर बोल रहा है। हमारी वीणा, कृष्णकी वंशीके साथ मिलकर बज रही है। देखो-देखो बादल ठिठक गये। तुम्बुरु गन्धर्व सी-सी करने लगे। सनन्दन-सनकादिका ध्यान टूट गया। ब्रह्मा आश्चर्यचकित हो गये कि हो क्या रहा है। यह बज रही है श्रीकृष्णकी बाँसुरी और उसमें मिल रही है हमारी हृदय-वीणा। हमारी हृदय तन्त्रीके तार मिल रहे हैं उसके साथ। क्या आनन्द है, आनन्द ही आनन्द है!

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

प्रीति चाहिए। बोलें तो शब्दोंमें थोड़ी-सी प्रीति भर दें। हाथसे छूयें तो हाथमें थोड़ी प्रीति भर दें। आपके हृदयकी प्रीति

घटेगी नहीं। कम नहीं होगी। कुएँ जैसे जितना पानी निकालोगे, उतना ही नीचेसे और आता जायगा और भी पवित्र। देख-देखकर प्रीति मत दो। जो सामने आजाय, पेड़ पौधेको भी प्रीति दो। कुत्ते-बिल्लीको भी प्रीति दो। धर्मात्मा लोगोंको छोड़ दो—वे कुत्ता नहीं छूते, कोई बात नहीं। प्रीति देनेमें छूनेकी भी क्या जरूरत है ? पशु-पक्षीको भी प्रीति दो—पेड़-पौधेको भी प्रीति दो। जो तुम्हारे सामने आजाय, तुम्हारी आँखोंमें-से प्रेम बरस पड़े। जिसको तुम छूओ वह आनन्दसे भर जावे। जिसकी ओर देखो, अपने हृदयकी प्रीति उसके ऊपर उँडेल दो। कञ्जूस बनाकर तुम्हें नहीं भेजा गया है। तुम्हें हृदय दिया गया है। तुम्हारे हृदयमें सद्भाव दिया गया है। सब परमात्माका स्वरूप है। सूर्य परमात्मा है। चन्द्रमा परमात्मा है। ग्रह नक्षत्र, तारे, परमात्मा हैं। ये वृक्ष-लता परमात्मा हैं। ये स्त्री, पुरुष परमात्मा हैं।

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

अपने हृदयको, अपने नेत्रको, अपने इन्द्रियको खूब पवित्रसे पवित्रतम, रसमय, मधुमय, लास्यमय बना दो। प्रेम करने लगें तो महाराज, जिन्दगी भर बेवकूफ ही रहेंगे ? बोलते हैं—नहीं भाई, तुम करो प्रेम, मैं देता हूं बुद्धि, बँटवारा कर लो। भगवान्ने कह दिया—

भजतां प्रीतिपूर्वकम्, ददामि बुद्धियोगम्।

प्रेम तुम्हारा, बुद्धि मेरी। आओ, हो गया दोनोंका योग। जब तुम मुझसे प्रेम करोगे तो तुम्हारे लिए और सारी दुनियाके लिए बुद्धिकी जितनी जरूरत पड़ेगी, वह मेरा खजाना खुला है, लो हमसे बुद्धि—

ददामि बुद्धियोगं येन मामुपयान्ति ते।

महाराज, कैसी बुद्धि देंगे ? भोग करनेकी बुद्धि देंगे, संग्रह

करनेकी बुद्धि देंगे—कर्म करनेंकी बुद्धि देंगे ? कौन-सी बुद्धि देंगे ? देखो, मैं वह बुद्धि दूँगा—

ददामि बुद्धियोगं तम् येन बुद्धियोगेन माम् उपयान्ति ।

मेरे अधिक-से-अधिक निकट तुम आजाओगे। मन्त्रीकी निकटता और सेठोंकी निकटता प्राप्त करनेके लिए कितनी चापलूसी करनी पड़ती होगी और सेठ लोग तो चापलूसीसे खुश भी हो जायँ, मिनिस्टर लोग तो आजकल चापलूसीसे खुश नहीं होते हैं। उनको तो कलदारं चाहिए। कौन-सी बुद्धि दोगे ? बोलो तो ? बोले—**येन मामुपयान्ति**—जिससे मेरे निकट आजाओगे। आना चाहते हैं मेरे पास ! तो मेरे पास आनेकी बुद्धि मैं दूँगा। 'कदम्ब तरे आजइयो'—यह तो ब्रजकी भाषा है। आप लोगोंको शायद अच्छी न लगे। भगवान्‌ने कहा—तुम मुझसे मिलना चाहते हो तो उस कदम्ब वृक्षके नीचे आजाना। मैं वहाँ मिल जाऊँगा। यह बुद्धियोग है। कहाँ जानेसे भगवान् मिलते हैं ? जरा बाहरकी जगह आँखमें आजाओ न ! आँखकी जगह दिलमें आजाओ। दिलकी जगह चेतनमें आजाओ और चेतनको ब्रह्मसे एक कर लो। वह बुद्धि दूँगा।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।
तेषामेवानुकम्पार्थं अहमज्ञानजं तमः॥
नाशयात्म्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।

मैं तुम्हारे रास्तेमें ऐसी मशाल लेकर खड़ा हो जाऊँगा—बुद्धि देनेवाला मैं, मशाल दिखाकर रास्ता बतानेवाला मैं, और मिलानेवाला मैं।

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रवचन–७

(१६-११-८०)

अम्ब त्वाम् अनुसन्दधामि। गीता माता—अम्ब—वर्णमयी। अम्ब शब्दका अर्थ है शब्दमयी-वर्णमयी, वाङ्मयी माँ, त्वाम् अनुसन्दधामि—तुम्हारा अनुसन्धान करती हूँ। माँका अनुसन्धान क्या है? जैसे बच्चा माँका दूध पीता है, वैसे गीता माँका जो दूध है—गोपालके द्वारा दुहा हुआ, अर्जुन बछड़ेने जिसका पान किया—यही माँका अनुसन्धान है। 'अविकम्प योग' विभूति योगकी जगह स्वयं भगवान्‌ने दसवें अध्यायको 'अविकम्प योग' नाम दिया है।

> एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
> सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥

ऐसा योग जो सुषुप्तिमें भी रहे। स्वप्नमें भी रहे, जगत्‌में भी रहे, समाधिमें भी रहे। ऐसा योग हो। पेड़-पौधा देखते समय भी रहे, पति-पत्नीमें प्रेम करनेके समय भी रहे; घरका काम करते समय भी रहे। बालकोंसे हँसते-खेलते भी रहे। इस अविकम्प योगकी विचित्रता यह है कि वह व्यवहारमें भी रहता है, और समाधिमें भी रहता है। अविकम्प योग वह है, जो शान्तिमें भी रहे और विक्षेपमें भी रहे। कभी विकम्पित न हो। एक सरीखा योग।

एक भक्त है, रोता है भगवान्‌के लिए। तब भी भगवान्‌से योग है, और हँसता है भगवान्‌को देखकर तब भी भगवान्‌से

योग है, क्योंकि उसका चित्त भगवान्‌के साथ लगा हुआ है। भगवान् ज्ञान हैं, भगवान् प्रेम हैं। आप चाहे घड़ा देखो, चाहे कपड़ा, चाहे मेज देखो चाहे कुरसी—ज्ञान आपको छोड़कर कहीं गया ? यह बात दूसरी है कि सूर्यकी रोशनी किस चीजपर पड़ रही है, पर सूर्यकी रोशनी तो रोशनी ही है। ज्ञान तो ज्ञान है। वह चाहे मेज-कुर्सी देखे, चाहे मन्दिरमें मूर्ति देखे। मूर्ति अलग है और कुर्सी-मेज अलग है, परन्तु ज्ञान तो वही है जो आपके भीतरसे, आँखके झरोखेसे झाँक रहा है।

श्री उड़िया बाबाजी महाराजसे एक बार किसीने पूछा—महाराज, एक साथ कइयोंसे प्रेम हो सकता है ? बोले कि माँ अपने बच्चेसे प्रेम करती है कि नहीं—अपने भाईसे, पितासे, पतिसे प्रेम करती है कि नहीं ? सबसे सच्चा करती है कि झूठा-झूठा करती है। उसका पितासे भी सच्चा प्रेम है, भाईसे भी सच्चा प्रेम है, माँसे भी सच्चा प्रेम है, पतिसे भी सच्चा प्रेम है।

यह ज्ञान है, यह प्रेम है। और यह अपना जीवन है, यह तो सबके साथ जुड़ा हुआ है। आकाशसे जुड़ा हुआ ही वायुसे जुड़ता है। वायुसे जुड़ता हुआ ही तेजसे जुड़ता है। तेजसे जुड़ा हुआ ही जलसे जुड़ता है। जलसे जुड़ा हुआ ही पृथिवीसे जुड़ता है। जीवन एकाङ्गी नहीं होता है। न जीवन एकांगी होता है, न प्रेम एकाङ्गी होता है और न ज्ञान एकाङ्गी होता है। जीवन सबका हित करनेके लिए है। प्रेम सबको सुख पहुँचानेके लिए है। ज्ञान सबको प्रकाश देनेके लिए है। आपका ज्ञान सबको प्रकाशित करे। आपका प्रेम सबको सुख दे। आपका जीवन सबकी सेवा करे। सोये भी उसीके लिए, जागे भी उसीके लिए। जो सबके जन्मका कारण है, वह सबमें भरा हुआ है।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

अहं सर्वस्य प्रभवः में गायत्रीका पहला अंश है। **सवितुर्देवस्य**—सबका सृष्टि कर्त्ता वही प्रभु है। **अहं सर्वस्य प्रभवः। प्रभवः** माने सविता—'प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः', जिसमें सबका जन्म हुआ, सबकी उत्पत्ति हुई, जो सबका कारण है और **मत्तः सर्वं प्रवर्तते।** गायत्रीका जो तीसरा पाद है **धियो यो नः प्रचोदयात्। मत्तः सर्वं प्रवर्तते।** गायत्री ही तो हुई न! वेदान्ती लोग इसमें एक चीज और जोड़ देते हैं। वह क्या है? जो सारी सृष्टिका कर्त्ता है, कारण है, प्रभव है, उद्भव है वही बुद्धि-प्रेरक भी है। सृष्टि-कर्ताके रूपमें वह तत्-पदार्थ है और बुद्धि-प्रेरकके रूपमें वह त्वं-पदार्थ है और समानाधिकरण्य होनेसे दोनों एक हैं। इसका अर्थ हो गया, जो परमात्मा है सो आत्मा है—जो आत्मा है सो परमात्मा है।

गायत्रीमें महावाक्य आगया—हमारी नाकसे बाहर आने जानेवाली साँस वायुसे अलग कहाँ हैं? जो वायु है सो साँस है। जो साँस है सो वायु है। **अहं सर्वस्य प्रभवः।** भगवान् सबकी उत्पत्ति, स्थिति, गतिके हेतु हैं—वही सबके जीवनके मूल तत्त्व हैं। वही सम्पूर्ण ज्ञानके रूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। वही सबके अन्दर परमानन्द हैं। **इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः।** ज्ञानी पुरुष इस बातको समझते हैं। समझते हैं माने—खिलौना चाहे कुछ भी हो मशाला एक है। ज्ञान चाहे कुछ भी, किसी-किसीका भी हो, कुछ-कुछका भी हो, पर ज्ञान एक है।

रस एक है—वह चाहे राधा-कृष्णसे हो, चाहे सीतारामसे हो, रस एक है। ज्ञान एक है। तब फिर भूतने समझा, विद्वान्ने

समझा कि सब कुछ वही है। अब वह जहाँ देखता है, वहीं उसका भाव लग गया। **भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।** यह भी भगवान् है, वह भी भगवान् है। यह राजनैतिक नेताका जीवन नहीं है। यह महात्माका जीवन है। यह पार्टीबन्दीवाली बात नहीं है। पार्टी तो बहुत संकीर्ण होती है। यह सम्प्रदाय नहीं है, यह मजहब नहीं है। यह जाति नहीं है। यह लिङ्गभेद नहीं है। यह भगवान् है। जो सब लिङ्गोंमें है, सब जातियोंमें है, सब सम्प्रदायोंमें है, सब राष्ट्रोंमें है।

आप अपने मनको छोटा क्यों बनाते हैं? सबमें वही है तो 'भावसमन्विताः'का अर्थ हुआ—यह देखो श्याम, वह देखो श्याम। राजा परीक्षितके जीवनका भागवतमें वर्णन आया है कि गर्भमें उन्होंने भगवान्‌का दर्शन किया था। तो वह ध्यान बना रहता था—जिसको देखते झट मनमें आता—कहीं वही तो नहीं है जो गर्भमें मुझे दर्शन दे गया—कहीं-वही तो नहीं आ रहा है? परन्तु संशय भी होता तो भगवान्‌के लिए होता। कहीं यह रावण तो नहीं आरहा है, कहीं यह कंस तो नहीं आरहा है—यह संशय नहीं होता। संशयमें भी भगवान् है।

भागवतमें आया **विकल्पः ख्यातिवादिनाम्** (११.१६.२४)। जितने सत्-ख्यातिवाले हैं उनमें आप कौन हैं? बोले—**विकल्पः ख्यातिवादिनाम्**—ऐसा भी मैं, वैसा भी मैं। यह भी मैं, वह भी मैं। यहाँ भी मैं, वहाँ भी मैं। जितने विकल्प आप बना सको सब मैं ही हूँ। जो कुछ जाहिर हो रहा है और तरह-तरहसे जाहिर किया जा रहा है उसमें एक ही भगवान् भरा हुआ है। विद्वान् वह जिसका भाव सबमें है। गीतामें आया—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः॥ (५.१८)

बुधे भावसमन्विताः बुधका भाव क्या है। स्वपाक, चाण्डाल, गाय, कुत्ता और हाथी कौन हैं ? वही-वही परमेश्वर। भागवतमें इसको और खोलकर बताया है। पण्डित कौन है ? पण्डित वह है जिसको ब्राह्मणमें, कसाईमें, चोरमें, भक्तमें, सूर्यमें, चिनगारीमें, अक्रूरमें, क्रूरमें सर्वत्र सम भाव हो। 'भले बने हो लम्बक नाथ !'— नामदेवका है—सबके रूपमें, 'जोजन भरि-भरि हाथ, क्या भूतका रूप धारण करके आये !' हम पहचानते हैं तुमको **मृत्युः सर्वहरश्चाहम्** (१०.३४) **अमृतं चैव मृत्युश्च** (९.१९)।

जहाँतक दो वस्तु है, वहाँतक एक विज्ञानसे सब विज्ञानका जो पाण्डित्य है, वह आया नहीं। अब यह भाव आवे कहाँसे ? बोले भाई थोड़ा तुम दिखाओ, थोड़ा हम दिखावेंगे। दोनों मिल-जुलकर देखें। जैसे आँख कहे मैं देखूँगा, सूर्य कहे मैं दिखाऊँगा— तो आँख न हो तो सूर्य किसको दिखायेगा ? और सूर्य न हो तो आँख किसको देखेगी ? आँख और सूर्य दोनोंने आपसमें सलाह कर ली। आओ हमलोग मिलजुल करके दिखावें, देखें। आँख हो गयी अध्यात्म, सूर्य हो गया अधिदैव और दीखनेवाली वस्तु हो गयी अधिभूत।

इन तीनोंका जो साक्षी है, वह आत्मा है। वह सूर्यमें रहकर सूर्यसे विलक्षण है। वह रूपमें रहकर रूपसे विलक्षण है। वह आँखमें रहकर आँखसे विलक्षण है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

तेषामेवानुकम्पार्थम्—यह देखो दया बरस रही है। तेषा-

सेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयामि—यह प्रकाश बरस पड़ा। नाशयाम्यात्मभावस्थः—प्रेमी और प्रियतम एक हो गये। 'ज्ञानदीपेन भास्वता'। मच्चिता मद्गतप्राणा—हम देखते हैं जगत् और देखते हैं अपनेको और देखते हैं भगवान्‌को। है तो एक ही। परन्तु हमारी बुद्धिमें अन्तर होता है। वस्तुमें अन्तर नहीं होता। भगवान् तीन नहीं बनते। एक भगवान् भगवान् है—एक भगवान् मैं बन जाये, एक भगवान् जगत् बन जाये। भगवान् तीन नहीं होता। हमारी बुद्धि ही तीन तरहकी हो जाती है। जैसे रस्सी साँप नहीं बनती; बुद्धि ही साँप बन जाती है। ऐसे परमात्मा जगत् या अहं नहीं बनता है। हमारी बुद्धि ही बिखर जाती है। तीन बनकर बिखर जाती है। हमारी बुद्धि ठीक होनी चाहिए।

भागवतमें एक विलक्षण लीला है। श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ नृत्य कर रहे हैं। एक श्रीकृष्ण, अनेक गोपी—रासमण्डल बना और नृत्य हो रहा है। उसमें क्या हुआ? उसमें गोपियोंका यह ख्याल हुआ कि हम बहुत सुन्दर हैं, हम बहुत मधुर हैं, वे कृष्णको देखनेके स्थानपर अपने मैं-को देखने लग गयीं। क्यों भाई, तुम्हें अपना गुणगान करना है कि भगवान्‌का। अपना सौन्दर्य निहारना है कि भगवान्‌का। भगवान्‌से अलग करके जब अपनी सुन्दरता देखने लगे, अपनी मधुरता देखने लगे—यह तो उन्हींका सौन्दर्य है, उन्हींका माधुर्य है, उन्हींका प्रेम है। गोपियाँ अपनेको देखने लगीं। और जब अपनेको देखने लगीं तब कृष्ण अन्तर्धान हो गये। जहाँ परिच्छिन्न अहंपर दृष्टि गयी, पूर्ण अहं छिप गया। प्रान्तपर दृष्टि गयी तो राष्ट्रका लोप हो गया। राष्ट्रपर दृष्टि गयी तो विश्व व्यापकताका लोप हो गया। जातिपर दृष्टि गयी तो मानवताका लोप हो गया। पन्थमें फँस गये तो गन्तव्य भूल गया। मैं-में फँस गये तो ईश्वर भूल गया।

एक प्रकाशकी हमारे जीवनमें जरूरत है। हम पन्थाइयोंकी बात नहीं करते। मौलवी अपना काम करे, पुरोहित अपना काम करे। पादरी अपना काम करे। आचार्य लोग अपने-अपने पन्थको लेकर जावें, लड़ लें—हम भगवान्‌को देखें सूरदासने कहा—'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' वल्लभाचार्यने कहा—नहीं-नहीं, यह नहीं, तुम अपने गीत क्यों गाते हो? गीत गाना हो तो भगवान्‌के गाओ।

मच्चित्ता मद्गतप्राणाः। आपका चित्त कहाँ गया? यह आपके बड़े कामकी बात है। क्योंकि भगवान्‌में संयोगका अनुभव—कि हमारे साथ भगवान् हैं या हमारी आँखोंके सामने भगवान् हैं यह जरा मुश्किल है, कठिन है लेकिन भगवान् हमारे साथ नहीं हैं—यह तो बहुत आसान है। सबको ऐसे ही लगता है कि भगवान् हमारे साथ नहीं हैं। भगवान्‌को याद नहीं आती। साथकी तो बात क्या? विरहमें जो भगवान्‌का वर्णन है, भागवतमें विरहका बहुत वर्णन है। विरहमें भगवान्‌की स्फूर्ति होती है। किसका विरह? जब हम गोपियोंका विरह, ग्वालोंका विरह, यशोदा मैया नन्दबाबाका विरह देखते हैं, सुनते हैं तब हमारी मनोवृत्ति विरहके साथ बहुत जल्दी मिल जाती है। क्योंकि जब हम दशरथजीकी मृत्यु सुनते हैं, हमारे बापकी मृत्युका स्मरण आजाता है। रोनेमें दोनों रहता है—दशरथजी की मृत्युके लिए रोना और अपने पिता, पितामहकी मृत्युके लिए रोना। दोनों मिल जाता है, तो भाव विरहका और मिल गया भगवान्‌से—

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥

जब तुम गोचारणके लिए प्रातःकाल गायोंके पीछे-पीछे चलते हो तो तुमको क्या मालूम कि यह कहाँ काँटोंमें, कहाँ कुशमें कहाँ-कहाँ घास चरनेको जायेंगी और उनके पीछे-पीछे तुम चलते हो। कितनी सुकुमार, कितनी सुन्दर, नलिनादति सुन्दर, नलिन-सुन्दर, हिन्दीमें किसीको कहें—कमल सुन्दर, नलिन सुन्दर तो, उसका अर्थ होगा नलिनके समान सुन्दर; परन्तु संस्कृतमें 'नलिना-दतिसुन्दरम्' 'नलिन-सुन्दरम्'—कमलसे भी अधिक सुकुमार, कोमल, आपके चरणारविन्द हैं।

कहीं कोई धान, कहीं कङ्कड़ पाँवके नीचे पड़ जावेगा, कहीं कुशका अङ्कुर पड़ जावेगा और वह आपके पाँवमें गड़ जायेगा। जब हमको यह ख्याल आता है—हमसे अलग, हमारी आँखोंसे अलग तुम वन-वनमें भटक रहे हो तो हमारा मन गड़ने लगता है। मलिन हो जाता है हमारा मन। अरे रास्तेसे चलेंगे, तुम क्यों दुःखी हो रही हो? क्या गौएँ रास्ते-रास्ते चलती हैं? गौओंके पीछे-पीछे जायेंगे। अरे बाबा काँटा, कुश जहाँ नहीं होगा वहींसे जायेंगे। नहीं-नहीं, वे गायोंकी ओर देखेंगे कि काँटा, कुश देखेंगे? नहीं बाबा, देख-देखकर चलेंगे—देख-देखकर तो चलेंगे, लेकिन कहीं कोई असावधानीमें गड़ गया तो! देखो कृष्ण गये गोचारणको और गोपीका मन गया कृष्णके पीछे। इसको बोलते हैं कलिलता। जैसे एकके बाद एक, एकके बाद एक, कृष्णके बारेमें हमारा मन सोच रहा है।

कलिलता मनः कान्त गच्छति।

(भागवत १०.३१.११)

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

आपके चित्तमें कौन है? क्या भगवान्का विरह है? विरहके

भी दो रूप होते हैं। एक अयोग और एक वियोग। पहले मिले ही नहीं हैं और जब मिलनेकी आशा टूट जाती है तब करुण हो जाता है। भगवान्‌के बारेमें आप सोचो, आपके चित्तकी स्थिति क्या है? कब देखेंगे, भगवान्‌के दर्शन कब होंगे? इसके लिए अपने चित्तमें कितनी व्याकुलता है? धनके लिए व्याकुलता है, सम्बन्धीके लिए व्याकुलता है, शरीरके लिए व्याकुलता है, लेकिन जो सबके प्राणोंका प्राण है, उसके लिए कोई व्याकुलता नहीं है। जो सबकी आँखोंकी आँख है, कानोंका कान है, जो वाणीकी वाणी है, प्राणोंका प्राण है, उसके लिए कोई व्याकुलता नहीं। श्रीव्रज धाममें ललिता सखी रोती हुई आयी श्रीराधारानीके पास। कुछ बोले नहीं, बोले नहीं। राधारानीने कहा मत बोल, मैं समझ गयी—श्रीकृष्ण नहीं आये न! बस, इतनी ही तो बात है—**मद्गतप्राणाः**—नहीं आये कोई बात नहीं।

यदि श्रीकृष्णके हृदयमें करुणा नहीं है, दया नहीं है तो इसमें तुम्हारा क्या अपराध है? व्यर्थमें रोवे मत। रोने-गानेसे क्या वे आजायेंगे? आगेकी बात देखो—आगे क्या करना है। मेरी प्यारी सखी! अब ऐसा प्रबन्ध कर दो, यह जो काला-काला श्याम तमाल है—मेरे इस शरीरको प्राण निकल जानेके बाद उसके साथ चिपका देना और हमारी दोनों बाँह उसके साथ लपेट देना। ये हमारी भुजाकी लता तमाल वृक्षके साथ लिपटा देना और मेरे शरीरको श्याम तमालके साथ लगा देना। जीवन कालमें नहीं मिले कृष्ण तो क्या हुआ? मरनेके बाद यह शव तो उस साँवरे तमालके साथ बहुत दिनों तक लिपटा रहेगा। श्रीकृष्णने सखीसे पूछा, क्यों री सखी! उनकी क्या दशा है? बोली—जी रही है। अरे मैं पूछता हूँ क्या दशा है और तूँ बताती है—जी रही है। हाँ, जी रही है। दशा क्या है? आप क्यों बार-बार पूछते हैं—अभी उसकी साँस चल रही है तो

मैं कैसे कह दूँ कि मर गयी। आप क्या यही सुनना चाहते हैं कि जीतेजी मैं कह दूँ कि वह मर गयी। श्रीकृष्ण ही हमारे प्राण हैं। श्रीकृष्ण ही हमारे चित्त हैं। **'मयि चित्तम् एषाम्'**—जिनका चित्त मुझमें लग गया है और **'अहमेव चित्ते एषाम्'**—मैं जिनका स्वयं चित्त हूँ। आँख बन्द करके देखें तो हृदयमें भगवान्, खुली आँखसे देखें तो मनमें भगवान्। चित्तका अर्थ है—प्यार और विचार। जब हम सोचते हैं तो भगवान्के बारेमें और जब प्रेम करते हैं तो भगवान्से। जिसके जीवनमें विरह नहीं जगा उसको संयोगका सुख नहीं आसकता।

आपके हृदयमें कभी भगवान्के न मिलनेकी व्याकुलता आयी है? कभी आपके हृदयमें ईश्वरके लिए व्याकुलता आयी है? विरहका दुःख हुआ है? जब यह विरहका दुःख आता है, दोनों तरफसे—विरहसे भी आता है, संयोगसे भी आता है। सबके लिए दुःख आता—सबके लिए रोये। परन्तु वह तो पूर्ण परमात्मा है। भले अभिमान कर लो, मैं ही हूँ। आत्मा ही है। हृदयकी रूक्षता नहीं मिटेगी। हमारे हृदयमें रूखापन, सूखापन है, भूखापन भी है। भूखापन क्या है? इधर दौड़ते हैं, वहाँ स्वाद मिलेगा। उधर दौड़ते हैं, वहाँ रस मिलेगा। उस मधुरताकी ओर मन खिंच गया, उस सुन्दरताकी ओर मन खिंच गया। उस गन्धकी ओर मन खिंच गया। उस संगीतकी ओर मन खिंच गया—बाबा, यह भूखापन नहीं तो क्या है? यहाँ यह खाना मिलेगा, वहाँ वह खाना मिलेगा—यह जो हमारा मन यहाँसे वहाँ, वहाँसे यहाँ भटकता रहता है।

भले अभिमान करो कि मैं अपने आपमें सन्तुष्ट हूँ, भले अभिमान करो कि हमारा प्रेम एक जगह है, स्थिर हो गया है। लेकिन यह मनकी रूक्षता है। यह जो सूखा हुआ मन

है—यह जो भूखा हुआ मन है, क्षुधा-पिपासासे व्याकुल है—कहीं उसको तृप्ति नहीं मिलती है। यही दशा हमारे मनकी है। भाई, मन लगानेकी जगह यह है और व्यवहार करनेकी जगह सारी है। इस लीलाकी उत्तमता ही यह है कि इसमें समाधिके समान तो व्यवहार-त्याग करनेकी जरूरत नहीं है। समाधि मत लगाओ; यह तो विक्षेप है—ठीक है, पर विषय-विक्षेप नहीं है। व्यवहार और समाधिके बीचमें ऐसी कड़ी है—यह भगवान्का प्रेम है—**मच्चित्ता मद्गतप्राणाः**। जीते भगवान्के लिए हैं—**मद्गतप्राणाः**।

जब पीड़ा होती है भगवान्के न मिलनेकी तब गरलको, जहरकी जो कटुता है, उसका गर्व टूट जाता है और जब मिलनका सुख आता है तो ऐसा आनन्द प्रवाहित होता है कि अमृतका गर्व चूर-चूर हो जाता है। यह भगवत्प्रेम है। **मच्चिता मद्गतप्राणाः**। कहो कि मौन हैं—बोलते नहीं हैं! **बोधयन्तः परस्परम्**—एक दूसरेसे भगवान्की चर्चा कर रहे हैं।

आओ, महात्माओंके पास। वहाँकी विशेषता क्या है? बाबाजी पहले मौनी था, हिमालयमें रहता था—गङ्गाकिनारा छोड़कर कहीं जाता ही नहीं था। परन्तु जब भगवान्के चरित्रामृतका आस्वादन करने लगे तो पहले कोशिश की कि पच जाये-पच जाये; अब किसीके सामने क्या बोलें? मन मस्त हुआ तो क्यों बोलें? बोलनेकी क्या जरूरत! लेकिन लीलाने ऐसा कुरेद्रा उसके हृदयको, मन मुखर हो गया। बड़े-बड़े महापुरुष भी मुखरित हो गये, बोलने लग गये। महात्मा लोग बोलते ही हैं भगवान्की लीला।

मधुसूदन भगवान्के चरित्रका जो शेष है माने हृदयमें पचा लेनेके बाद जो बच गया है वह उनके मुखसे निकलता है। नदियाँ बहती हैं। जहाँ बोलेंगे—भगवान्की लीला, भगवान्का चरित्र।

उनको पीनेके लिए दो चीज चाहिए—एक तो प्यास बुझे नहीं और कान दूसरी ओर जायँ नहीं। न आपके मनमें भय आवेगा, न शोक आयेगा, न मोह आयेगा। भविष्यमें मन जायेगा तब न भय आवेगा! भूतमें मन जाय तब न शोक आयेगा! वर्तमानके चारों ओर मन जाये तब न मोह आयेगा? भय, शोक, मोह, वासना अशना, पिपासा, सब-के-सब दूर हो जायेंगे। आओ, भगवान्‌के चरित्रमें एक बार गोता लगाओ। क्या स्थिति होती है—

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

कहानी भी कहो तो भगवान्‌की। ऐसी-ऐसी कहानियाँ हैं जो मनको खींच लेती हैं। कहानी माने भगवान्‌के चरित्रकी, भगवान्‌के गुणकी, भगवान्‌के स्वरूपकी, लीलाकी, चेष्टाकी, तत्त्वकी व्याख्या।

भगवान्‌ने ऐसा क्यों किया? आओ, कहानी कहो तो भगवान्‌की ओर देखो और रम जाओ। जब कोई भगवान्‌को देखता है, उसमें रम जाता है, सन्तुष्ट हो जाता है तो उसके बाद उसका कर्तव्य नहीं होता। कर्तव्य किसका है? भगवान्‌का। बेटा सुस्त पड़ जाये तो बाप उसको अपनी गोदमें उठा लेता है और बाप सुस्त पड़ जाय तो बेटा उसको अपनी गोदमें उठा लेता है—**बोधयन्तः परस्परम्।** एक दूसरेको जगाते हैं। हमारा भाई सो जाय तो हमने जगा दिया। हम सो जायें तो हमारे भाईने जगा दिया। हम लोग एक बार साथ-साथ यात्रा कर रहे थे। कहो गुरुभाई—कैसा है? क्या बतावें भाई, कुछ हुआ ही नहीं। वेदान्ती लोग ऐसे बोलते हैं।

न कछु हुआ, न है कछु, न कछु होवनहार।

भक्तोंसे पूछो तो अभी तो भगवान् सोकर उठे हैं—आँखमें काजल फैल गया है, उसको धो रहे हैं। वे ऊँ-ऊँ कर रहे हैं—अभी तो

अँगड़ाई ले रहे हैं। उनके लिए मैया माखन-मिश्री ला रही है—क्या हो रहा है? भगवान् अभी माखन-मिश्री खा रहे हैं—अभी मैया गोरोचनाका तिलक लगा रही है। करधनी-कंगन पहना रही है—**बोधयन्तः परस्परम्।** क्या हो रहा है? भगवान् इस समय क्या कर रहे हैं? आसमानमें बादल बहुत हो रहे हैं—ना-ना, बादल नहीं, वे तो श्यामघन हैं—क्या आनन्द है भगवच्चर्चाका—न राग न द्वेष।

भगवान्की चर्चा करो तो संसारमें किसीकी मोहब्बतमें फँसोगे नहीं। भगवान्की चर्चा करो, किसीसे नफरत नहीं होगी। और दुनियाकी चर्चा करोगे तो किसीसे मोहब्बत हो जायगी, किसीसे नफरत हो जायगी। काम सब करो—सेवा करो लेकिन किसीसे मोहब्बत-नफरतसे बचनेके लिए, राग-द्वेषसे बचनेके लिए यह जरूरी है कि हमारे हृदयमें उस वस्तुसे प्रेम हो, जो दोनोंमें है। जो दोनोंमें है वही प्रेम करने योग्य है। जो एकमें है, एकमें नहीं है, वह प्रेम करने योग्य नहीं है। शून्य-मन्दिरमें भी वही रहता है योगाभ्यास करते हुए जब ऊपर बढ़ते हैं! एक शून्य-शिखर पड़ता है, ऐसा योगाभ्यासी लोग बताते हैं। सहस्रार है, हृदयकमल है—नाभिकमल है, मूलाधार है—हृदयकमलमें इष्टदेव बैठे हैं। सहस्रारमें गुरुदेव बैठे हैं। शून्य-शिखरवाले मन्दिरमें कुछ नहीं=मन्दिर तो है पर मन्दिरमें कुछ नहीं। जो साकारमें है, वही निराकारमें है। जो मूर्तिवाले मन्दिरमें है, वही बिना मूर्तिवाले मन्दिरमें है। अब भगवान् कहते हैं—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥

(भाग० ११.२९.३४)

एक बार हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ। भगवान् कहते हैं

अच्छा, तुम समर्पित हो गये तो तुम्हारी सारी जिम्मेवारी मेरे ऊपर आगयी। मैं अब तुमको विशिष्ट बना रहा हूँ, क्योंकि अब मुझे सँवारना है, मुझे सजाना है।

मैंने कभी सुनाया होगा, एक लड़की मुझे पूरो परोसनेके लिए ला रही थी। रसोइयेने पूरी जरा मोटी-मोटी बना दी थी। उसने सोचा बाबाजी लोग हैं, इनको चाहे जैसा खिला दो। वह लड़की जब लेने गयी तो बोली कि यह पूरी लेकर मैं जाऊँ ? मैं और ऐसी पूरी लेकर जाऊँ ? दूसरी दो। जब एक अच्छे घरानेकी लड़कीपर जिमानेकी जिम्मेवारी आयी तो उसने कहा मैं अपने हाथसे ऐसी पूरी लेकर नहीं जा सकती। जब हमारे सँवारने, सजानेकी जिम्मेवारी भगवान्पर आ जाती है, भगवान् कहते हैं कि 'मैं उसको विशिष्ट बनाना चाहता हूँ'—जब मैं सँवार रहा हूँ तो 'उसको ऐसा सवारूँगा कि ऐसा दूसरा कोई होगा नहीं।' अब भगवान्की अनुकम्पा बरसी न ! हम तो रँग गये उनके चरित्रमें, उनकी कथामें, उनके प्रबोधमें, उनके गुणमें, उनके रूपमें, उनकी लीलामें और वे बैठकर हमको सँवारने गये।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

उनके उपर हमारी अनुकम्पा है—अनुकम्पाका अर्थ है दिल काँपने लगे—कम्पन-अनुकम्पन; एक आदमी दुःखसे काँप रहा है और भगवान्का हृदय उसका दुःख दूर करनेके लिए काँप रहा है। अनुकम्पा माने भगवान् व्याकुल होगा। अरे—मेरे रहते, मेरा भक्त इस तरह दुःखी हो रहा है। इस दशामें पड़ा है ! मेरा भक्त, मेरी याद कर रहा है और उसका शरीर ऐसा है ! उसका मन ऐसा है ! मेरी याद कर रहा है, उसका जीवन ऐसा है ! काँप गये भगवान् ! लोग क्या कहेंगे ! भक्ति सम्प्रदायका दोष हो

जायगा। कोई दुनियामें मेरा नाम नहीं लेगा। डर गये भगवान्! अब दुनियामें मेरा कौन नाम लेगा! मेरा नाम लेकर, मेरे पास आकर, मेरी ओर इसकी मनोवृत्ति बह रही है। मुझमें रम जाता है। मुझमें सन्तुष्ट है। फिर भी—कहीं इसके अन्दर एक भी दाग नहीं रहना चाहिए। **अज्ञानजं तमः।**

अरे तुमको रास्ता नहीं दीख रहा है। **भास्वता ज्ञानदीपेन।** प्रज्वलित ज्ञान, उल्लसित ज्ञान लेकरके भगवान् आये और बैठे कहाँ? उसके हृदयमें—**धियो यो नः प्रचोदयात्।** भागवतमें लिखा है—चुम्बकके पास लोहा नाचता है वैसे भगवान् हृदयमें बैठे हैं। भगवान् बीचमें बैठे हैं और हमारी चित्तवृत्तियाँ उनके चारों ओर नाच रही हैं। **धियो यो नः प्रचोदयात्।** हजार-हजार वृत्ति रूप गोपियाँ नृत्य कर रही हैं और बीचमें है एक नट। ऐसा नट जो सबके साथ नाचता है। सबके हाथ-में-हाथ मिलावे और गरबा नाच कर रहे हैं। गोपियाँ तो नाचनेवाली हैं अनेक, लेकिन बीचमें एक ऐसा है जो दोनों हाथमें लकड़ी लेकर खड़ा है। सबकी लकड़ीपर उसकी लकड़ी गिरती है।

अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।

रोशनी कर दी—जहाँ रास हो रहा है वहाँ पहले **ज्ञानदीपेन भास्वता**—परम प्रकाशमय एक दीपक प्रज्वलित किया और वहाँ अन्धकार दूर हो गया, तब सब देखने लगे भगवान्‌को और भगवान् देखने लगे सबको। एक गोपी, एक कृष्ण, एक गोपी, एक कृष्ण—इस प्रकार एक गोपीके बाद एक कृष्ण विराजमान होकर नृत्य करने लगे। बाँसुरी बज रही है और बाँसुरीकी स्वर-लहरीपर हमारी वृत्ति गोपियाँ नृत्य कर रही हैं—भागवतमें ऐसा ही वर्णन है।

वेदान्ती कहते हैं कि दो वृत्तियोंकी सन्धि, सन्धिमें सामान्य

चेतन और वृत्तिमें विशेष चेतन, गोपियोंके भीतर प्रवेशकर भी वही नाच रहे हैं, गोपियोंके बीचमें खड़े होकर भी वही नाच रहे हैं। वहीं वृत्त्यारूढ चेतन और वही संधिस्थ चेतन। गोपियोंका नाम कृष्ण-वधू है। 'वहन्ति इति वध्वः'। वे श्रीकृष्णको तो अपनी गोदमें उठा लेती हैं। अपने ऊपर—वहन्ति-बध्नन्ति इति वध्वः। जो अपने भुज-पाशमें बाँध ले उसका नाम वधू। वधू माने जो अपने पतिको अपने भुज-पाशमें बाँध ले। वधू माने जो अपने पतिको अपनी गोदमें उठा ले। कृष्णवध्वः——ये कृष्णको बाँध लेती हैं। ये कृष्णको उठा लेती हैं। ये हमारे हृदयकी प्रेममयी वृत्तियाँ हैं—कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण !

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रचव न–८

(१७-११-८०)

भगवान् श्रीकृष्णने भजन करनेवालोंके बारेमें दो बात कही। एक तो भजतां प्रीतिपूर्वकं ददामि बुद्धियोगम्। जो प्रीतिपूर्वक भजन करते हैं, उन्हें मैं बुद्धियोग देता हूँ और दूसरी बात कही तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः। उनके ऊपर मैं कृपा करता हूँ। बुद्धियोग दिया उससे जीव स्वयं परमेश्वरके पास पहुँच गया। उसीके हाथमें साधन दे दिया और तीसरा बताया कि मैं ऐसी कृपा करता हूँ कि उनके हृदयमें स्वयं बैठ जाता हूँ और उनके अज्ञानान्धकारका नाश करता हूँ। जीवके बुद्धियोगसे भी परमात्माकी प्राप्ति होती है और भगवान्‌की कृपासे भी परमात्माकी प्राप्ति होती है। यह दो विभाग हो गये। जो पौरुषवान् हैं, प्रयत्नशील हैं, उनके हाथमें भगवान्‌ने साधन दे दिया—तुम आजाओ—येन मामुपयान्ति। और एक स्वयं दीपक लेकर मसाल लेकर रास्ता दिखाते हैं। रास्ता दिखानेवाले भी वही और मिलनेवाले भी वही।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।
(१२.६.७)

एकको नदीके पार जाना था। पार जाकर किसीसे मिलना था, उससे पहचान नहीं थी। नदीके तटपर जाकर खड़ा हुआ। व्याकुल हुआ कि नदीके पास कैसे जायँ? जिससे मिलना था उस मित्रको पता चल गया कि वह हमसे मिलनेके लिए आया है और नाव न मिलनेसे व्याकुल हो रहा है। स्वयं नाव खोली, लंगर उठाया और डाँड़ देता हुआ पहुँच गया—उसको लेनेके लिए। अब वह तो इतना निर्बल था कि नावपर चढ़ भी नहीं सकता था। वह नावसे उतरा, उसको दोनों हाथसे उठाया।

हमारे गाँवके पास जो मल्लाह लोग थे वे हमको ऐसा किया करते थे। हम जब बच्चे थे तो नावपर चढ़नेको जाते थे तो नावपरसे हमको उठाके छातीसे चिपका लेते तथा प्यार भी करते और नावपर बैठाकर पार कर देते। अब तो मल्लाह लोग ऐसा करते हैं कि नहीं, हमको मालूम नहीं—पर हमारा पाँव कीचड़में नहीं पड़े, हमको जूता नहीं निकालना पड़े, इसके लिए वे अपनी गोदमें उठा लेते थे।

भगवान् नाव लेकर आते हैं और देखते हैं कि यह निर्बल है तो उसको अपनी गोदमें उठा लेते हैं। नावमें बैठा देते हैं। अब भक्तने भगवान्को पहचाना तो है नहीं—कहता है आप डाँड चला रहे हैं, हम भी थोड़ी आपको मदद करें। नहीं भाई, तुम चुपचाप बैठे रहो, नाव तो मैं चलाऊँगा। इतने कृपालु तुम कौन हो? बोले, जिससे तुम मिलने जा रहे हो—वही हम हैं। तुम मुझे निहार-निहारकर प्रेमभरी दृष्टिसे देखो। तुम आनन्द हो, मैं नावको खेकर ले चलता हूँ।

लाददे, लदादे और लादनवारो साथ दे।

भगवान् ऐसे हैं—रास्ता भी दिखाते हैं, जो कठिन काम हो

उसको आसान भी बना देते हैं और उन्हींसे मिलना है तो वे स्वयं आकर मिल भी लेते हैं।

> तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञनाजं तमः।
> नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥
> (१०.११)

एक बात है कि कृपा भगवान्‌की सबके ऊपर बरसती रहती है। सोते हुएको जगानेमें भी कृपा है। जागे हुएका हाथ- मुँह धुलानेमें भी कृपा है। उसको खिलानेमें, सुलानेमें भी कृपा है। काम लेनेमें भी कृपा है—कृपाके सिवाय तो और कुछ नहीं है। भक्त लोग कहते हैं कि सबसे बड़ा कृपा-पात्र मैं ही हूँ।

श्रीयामुनाचार्यजीका एक श्लोक है—जिसका भाव यह है कि मैं बहुत दिनोंसे भवसागरमें डूब रहा था—इसके थपेड़े खा रहा था। बहुत दिनके बाद—जैसे डूबते हुएको किनारा मिल जाय वैसे तुम मुझे मिल गये हो। पर मुझे तुम मिले हो यही प्रसन्नताकी बात नहीं है, तुम्हें भी प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हें मैं मिल गया हूँ। अरे बाबा, तुम मिले तो कौन-सी ऐसी बात मिल गयी? बोले—दयाका ऐसा उत्तम, बढ़िया पात्र आपको कभी मिला नहीं होगा। आप भी खुश हो जाइये कि आनेवाली दया सार्थक हो जायेगी। यह दयाका अत्युत्तम पात्र, जिससे उत्तम पात्र कभी मिल ही नहीं सकता, वह मिला है। आप भी मुझे पाकर प्रसन्न हो जाइये। दयाका पात्र वह होता है, जिसमें किसी प्रकारका अभिमान न हो। दयाका भी अधिकारी होता है।

> तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
> ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

मैं धर्मनिष्ठ नहीं हूँ। आत्मज्ञानी भी नहीं हूँ, आपके चरणार-

विन्दमें मेरी भक्ति भी नहीं है। अकिंचन हूँ—मेरे पास कोई सम्बल नहीं है। कोई सामग्री नहीं। कोई साधन नहीं। आपके अतिरिक्त और किसी दूसरेका सहारा नहीं। अब तो तुम्हारे चरणारविन्दके सिवाय और कोई भी आश्रय हमारे पास नहीं है। जब भक्त निरभिमान होकर भगवान्‌को ओर देखता है तो भगवान्‌की शक्तिका आश्रय भी अपना सारा काम करने लगता है। भगवान्‌की शक्ति तो और बढ़ना चाहती है—और बढ़ना चाहती है। निरभिमान स्थल मिलते ही उसमें भगवान्‌की शक्ति प्रवेश करती है और वहाँसे अपना सारा काम करने लगती है। जबतक हम अपनी शक्ति लगाते हैं—तबतक वह थोड़ी रहती है और जब हमारी शक्ति क्षीण हो जाती है, तो भगवान्‌की शक्ति प्रकट हो जाती है।

एक महात्माने बताया कि भगवान्‌के टेलीफोनका नम्बर जोड़नेके लिए शून्य है—अपने हृदयको अभिमानसे रहित करो—भगवान्‌का टेलीफोन जुड़ गया। कहते हैं कि ऐसा टेलीफोन बनने-वाला है जिसमें बात करनेवालेकी शकल भी दिखेगी—यह भगवान्‌का ऐसा नम्बर है कि भगवान्‌से बात भी हो और भगवान्‌की शकल-सूरत भी दिखायी पड़े।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

भगवान् बुद्धि देते हैं और ऐसी बुद्धि जो भगवान्‌के साथ जाकर मिल जाती है। जैसे पति-पत्नीका संयोग होता है, ऐसे बुद्धि और भगवान्‌के संयोगका ही नाम बुद्धियोग है। हमारी बुद्धिका विवाह किससे हुआ ? आप लोग इसको कोई छोटे दर्जेकी बात मत समझना। वेदोंमें जो ऋचाएँ, श्रुतियाँ हैं उनमें कोई अग्निदेवताका वर्णन करती हैं, कोई इन्द्रदेवताका वर्णन करती

हैं, कोई वरुण देवताका वर्णन करती हैं, कोई पूषा देवताका वर्णन करती हैं, कोई बृहस्पति देवताका वर्णन करती हैं। ये सब वैदिक देवताएँ हैं और भिन्न-भिन्न ऋचाओंके द्वारा उनका प्रतिपादन होता है।

ऐसे कहते हैं कि इन वेदकी ऋचाओंका विवाह-अमुक-अमुक देवताओंसे हो गया है और सब अपने-अपने देवताका, इन्द्रका, अग्निका, वायुका, वरुणका प्रतिपादन भी करती हैं। उन्हींके साथ रहती हैं, उन्हींका प्रतिपादन करती हैं। लेकिन ये सब ऋचाएँ वस्तुतः परमात्माका प्रतिपादन करती हैं। उनका विवाह तो हुआ है, इन-इन देवताओंमें गुप्तरूपसे रहनेवाले भगवान्‌के साथ। उनका परम तात्पर्य तो है भगवान्‌में और उनका वाचनिक प्रयोग है देवताओंके लिए। इसी तत्त्वका वर्णन गोपियोंके जीवनमें किया हुआ है। बाहरसे उनके पति गोप हैं और भीतरके सब गोपोंके हृदयमें रहनेवाले भगवान्। वे पतिके केवल शरीरसे नहीं, केवल अन्तःकरणसे नहीं, उनकी अन्तरात्मासे प्रेम करती हैं—क्योंकि सबकी अन्तरात्मा स्वयं परमात्मा है। यह बात भागवतमें इतनी स्पष्ट है कि कोई असावधानीसे भी पढ़ता जाय तो उसको मिलेगा।

> गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
> योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्॥
> (१०.३३.३६)

ये कोई 'मन्ये' नहीं है, 'जन्ये' नहीं है। जानो-मानो नहीं है, यह जनो-मनो नहीं है। यह स्पष्ट वर्णन है कि गोपियोंके हृदयमें जो अन्तरात्मा है, गोपीके पतिके हृदयमें अन्तरात्मा है, सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें जो अन्तरात्मा है वही यहाँ श्रीकृष्णके रूपमें क्रीड़ा कर रहा है. वही सबका अन्तरात्मा है। तब बुद्धियोगका

अर्थ क्या हुआ? बुद्धिके भीतर बैठा हुआ—**धियो यो नः प्रचोदयात्**। बुद्धिका प्रेरक, जो परमात्मा है, उस परमात्माके साथ बुद्धिका संयोग।

यह बात आपको थोड़ा खुलासा करके सुनाते हैं। जैसे आप गीता किसी पण्डितसे पढ़िये—उसमें व्याकरण कैसे है, पदच्छेद कैसे है? कहाँ व्याकरणके अनुसार ठीक है, कहाँ गलत है? अन्वय कैसे है? एक-एक शब्दका अर्थ आप अलग-अलग सीख लीजिये। तो आपका अध्ययन हुआ, आपका स्वाध्याय हुआ। हमलोग वे गीता पढ़ानेमें वैसे इतने निपुण नहीं हैं। हम गीताका रसास्वादन करते हैं। रसगुल्ला बनाना दूसरी चीज है। रसगुल्ला बनाना सीखना दूसरी चीज है, और उसको मुँहमें लेकर उसका स्वाद लेना दूसरी चीज है। हमारे महात्माओंके सम्प्रदायमें इसके लिए अध्ययन शब्द नहीं चलता, स्वाध्याय शब्द भी नहीं चलता। आस्वादन शब्द चलता है। हम गीताका, गीताके रसका आस्वादन कर रहे हैं।

साहित्यिक लोगोंने तो 'रस-चर्वण' शब्दका प्रयोग कर रखा है—चर्वण करते हैं। होगी कोई कठोर वस्तु जिसका वे चर्वण करते हैं। हम चर्वण नहीं करते। हम तो रसास्वादन करते हैं। यह है गीताका रसास्वादन।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

प्रीतिपूर्वक भजन, भजन माने रसास्वादन होता ही है।

किं नाम भजनं भजनं नाम रसास्वादनम्।

भजन माने रसन—स्वाद लेना। कहाँ स्वाद लेते हो? भगवान्का स्वाद ले-लेकर हम भगवान्की चर्चा करते हैं। हम

भगवान्की चर्चा करते हैं। एक वार प्रेमभरी आँखसे, चितवनसे भगवान्ने हमारी ओर देख लिया। अब चलो गीतामृतका आस्वादन करें। एकबार उन्होंने मुस्कराकर देख लिया। एकबार कह दिया वाह-वाह—बहुत बढ़िया। सिरपर हाथ रख दिया—आओ रसास्वादन करें।

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

प्रीति चाहिए। हम भी तृप्त हो रहे हैं और हमारा मालिक भी तृप्त हो रहा है। सेवा करनेका आनन्द सेवकको भी आ रहा है और जिसकी सेवा की जा रही है उसको भी आनन्द आ रहा है। यह स्वादका व्यापार है। स्वादका लेना, स्वादका देना। स्वादकी अनुभूति स्वादको वर्षा—यह रस है। भवभूतिने कहा कि प्रीति वह चीज है जहाँ हृदयको विश्राम मिलता है। वुढ़ापा आनेसे रसमें कोई कमी नहीं आती। भवभूतिके 'उत्तर रामचरित नाटक'का वचन है—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः॥ (१.३९)

यह प्रीति—चाहे अपना प्यारा सुख दे कि दुःख दे, इससे क्या मतलब है? हमें सुखसे, दुःखसे मतलब नहीं है। हमें तो प्यारसे मतलब है। वह सुख दे, तब भी देनेवाला वही, दुख दे तब भी देनेवाला वही। सुख-दुःखको नहीं देखते हैं, देनेवालेको देखते हैं। कितना प्यार है उसके दिये हुए दुःखमें, जब वह डाँटता है।

एक महात्मा थे। वे कभी किसीपर नाराज नहीं होते थे। एक दण्डी स्वामीने आकर शिकायत की कि आपके यहाँ जो सेवा करनेवाला और झाड़ू लगानेवाला है, इसने मेरा अपमान किया

है। बहुत पुराना था वह झाड़ू लगानेवाला; दण्डी स्वामीजीसे भी बहुत पुराना था और बहुत प्रेमी थी। बाबाने उसको बुलाया और हाथमें लिया डण्डा और उसको १-२ डण्डा लगाया। बाबाको तो कभी क्रोध ही नहीं आता था, उस समय भी क्रोध नहीं था। अब वह जिसको डण्डा लगाया वह तो महाराज, नाचने लगा खुशीमें नाच गया! उसका नाम रामसिंह है, अभी जिन्दा है। बोला कि इतना प्रेम तो बाबाने कभी किसीसे किया ही नहीं। यह सौभाग्य तो जीवनमें केवल हमको मिला है।

अपने प्यार-डाँट, अपने प्यारेकी फटकार, अपने प्यारेकी टेढ़ी नजर, अपने प्यारेकी कड़वी बात—आप प्यारेको देखते हैं कि कड़वाहटको देखते हैं। प्रेम वह है कि जिसमें तृप्तिका लेना, तृप्तिका देना, और कभी पेट न भरना। 'नूतनं-नूतनं पदे-पदे'। पद-पदपर नया। यह प्रीतिकी रीति है। 'आली, प्रीतिकी रीति निराली, प्याली भरे न खाली होय।' यह हृदयका प्याला न कभी भरता है न कभी रिक्त होता है। और-और-और! **भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**

सततयुक्तानां—जो है वह तो अनुराग है। वह विधान नहीं है। अनुराग है। जिसके हृदयमें प्रीति होती है, वह तो घूम-फिरकर वहीं पहुँच जाता है। भागवतमें लिखा है कि श्रीकृष्ण बारम्बार नारदजीसे कहते थे कि जाओ, जरा स्वर्गका पता लगा लाओ क्या हाल है? जरा हस्तिनापुर हो आओ, इन्द्रप्रस्थ हो आओ। व्रजमें हो आओ। नारदजी आये और भगवान्ने उन्हें कहीं-न-कहीं भेजा। लेकिन वे तो मिनिटोंमें काम करके फिर आजाते थे।

कहीं भी गये घूमकर वहीं आगये। हम देखते हैं—दूसरा कोई जब अपने बच्चेकी चर्चा करने लगता है तो सुननेवाला उसके

बच्चेकी चर्चापर ध्यान नहीं देता। तुरन्त अपने बच्चेकी चर्चा करने लगता है क्योंकि दिलमें तो अपना ही भरा हुआ है। बारम्बार मन घूम-फिरकर वहीं आजाता है, जहाँ प्रेम हो। मनका यही स्वभाव है। सततयुक्तानाम्का अर्थ है—घूम-फिरकर वहीं-का-वहीं—इसका कारण बताया है भागवतमें—

को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम्।
न भजेत् सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः॥ (११.२.२)

कौन कृष्णसे प्रेम करे, भगवान्‌से प्रेम कौन करे, रामसे प्रेम कौन करे ? बड़े ब्राह्मण, वाजपेयी, बृहस्पति, वेदवादी ? बोले—ना-ना, केवल उनके लिए भगवत्-प्रेम सीमित नहीं है। तो राजसूय यज्ञ करनेवाले, अश्वमेघ यज्ञ करनेवाले, क्षत्रिय ? बोले—राजसूय यज्ञ करनेवाले, अश्वमेध यज्ञ करनेवाले क्षत्रिय ? नहीं, उनके लिए नहीं। बड़े-बड़े वैश्य स्तोत्र करनेवाले (वैश्य-स्तोत्र एक यज्ञ होता है) व्यापारी ? बोले—ना-ना, उनके लिए भी सीमित नहीं है। शूद्र ? बोले कि उनके लिए भी सीमित नहीं है। यज्ञ सबके लिए होता है। बोले तब—

को नु राजन् इन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजं न भजेत् ?

भगवान्‌के भजनके लिए केवल इन्द्रिय होना जरूरी है। आँखसे हमें दीखना चाहिए। कानसे सुनना चाहिए। इसमें ज्ञानकी जरूरत नहीं है, ध्यानकी जरूरत नहीं है। पूजा, उपासनाकी जरूरत नहीं है। यदि हमारे आँख है तो उससे बढ़िया देखनेकी कोई वस्तु नहीं है—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः। (१०.२१.७)

गोपी कहती है—आँख मिलनेका फल यह है—इन आँखोंसे श्यामसुन्दरको निहारें।

रुक्मिणी कहती है—इन आँखोंके लिए, आँखवालोंके लिए—सबसे बड़ा लाभ यह है कि श्यामसुन्दरकी जो मधुर मूर्ति है उसको देखें। भजतां प्रीतिपूर्वकम्, सततयुक्तानाम्—इससे व्यवहारमें कोई बाधा पड़ेगी ? बिलकुल नहीं। प्रीतिकी एक रीति है। हम तो प्रेमके राज्यमें रहते हैं। यहाँ तो बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग इकट्ठे होते हैं—इनके बीचमें बुद्धिकी बात करनी पड़ती है। प्रीतिकी एक रीति है। अपने प्रियतमसे भी एक चीज बड़ी होती है। जिससे हम प्यार करते हैं, उससे भी एक चीज बड़ी होती है। यह प्रेमशास्त्रियोंने निश्चय किया है। प्रेमीके लिए प्रियतमसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु हो नहीं सकती। लेकिन प्रीतिकी रीति ऐसी विलक्षण है, निराली है कि प्रियतमसे भी बढ़कर होती है—प्रियतमकी सेवा।

यशोदा मैया कृष्णको छोड़कर दूध उतारने जाती हैं। क्योंकि दूध ठीक नहीं पकेगा, जल जावेगा तो हमारा लाला कैसे पीवेगा ? वे कृष्णको छोड़कर दही जमाने जाती हैं, क्योंकि ऐसा बढ़िया दही जमे कि हमारे लालाको प्यारा लगे। लालाको छोड़कर अपने हाथसे दहीको मथकर माखन निकालती हैं। क्यों ? क्योंकि वह माखन लालाके लिए है। व्रज तो प्रेमकी राजधानी है न! कहते हैं गोलोक है। कहते हैं—ब्रह्मलोकमें तो दास्यरस रहता है। वैकुण्ठ लोकमें ऐश्वर्य रहता है। ईश्वर-स्वामी व्रजभूमिमें वात्सल्य रस रहता है और वृन्दावनमें मधुर प्रेम रहता है। वृन्दावन मधुर प्रेम की राजधानी है।

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

प्रियतमसे भी प्यारा कौन ? बेटा, सोते रहो—क्यों ? बोलीं हम चाय तो तैयार कर लें। हम तुम्हारे लिए चाय तैयार कर लेते हैं तुम लेट जाओ। हम झट लाते हैं। अपने प्रियतमसे बड़ा कौन ?

अपने प्रियतमको जिससे सुख मिले वह सेवा—तव फिर तो आप सेवा करते रहिये, काम करते रहिये—हर समय प्रियतमसे चिपके रहनेकी जरूरत नहीं है।

सततयुक्तानाम्का अर्थ है—काम करो उसके लिए और उस प्रियतमके लिए जरा सोचो जो सबमें है और सर्वरूप है। उसकी सेवा करनेमें प्रियतमसे योग-विच्छेद कहाँ होता है? जो सबमें है, उसको सुख पहुँचाना है, उसकी सेवा करनी है—तो रोटी बनाते हैं किसके लिए? घरकी सफाई करते हैं किसके लिए? घरका शृङ्गार करते हैं किसके लिए?

अर्जुनते पूछा कि कृष्ण, एक वात हमको सच्ची-सच्ची वता दो। तुम्हारा सच्चा, सबसे बड़ा गुप्त प्रेमी कौन है? कृष्णने कहा अर्जुन! गोपियाँ अपना बाल सँवारती हैं मेरे लिए, तेल-फुलेल लगाती हैं मेरे लिए, साड़ी पहनती हैं मेरे लिए, दही बेचने निकलती हैं मेरे लिए, उनका रोम-रोम मेरे लिए है। वे कहती हैं यह हाथ कृष्णका है, यह सुन्दर रहना चाहिए। यह मुख कृष्णका है, यह खिला हुआ रहना चाहिए। ये आँख कृष्णकी हैं, यह कभी कुम्हलानी नहीं चाहिए। कभी मुरझानी नहीं चाहिए। क्योंकि ये उनकी हैं। अब बताओ आपके व्यवहारमें बाधा कहाँ पड़ेगी? कृष्णसे व्यवहार करेंगे तो न आपका कोई सम्वन्धी छूटेगा, न आपकी कोई वस्तु छूटेगी, न आपका व्यवहार छूटेगा। बात तो केवल इतनी ही है कि 'उनके लिए।'

धर्मका विचार दूसरा है और प्रेमका दूसरा। दो शब्द इसके बारेमें सुनाता हूँ। धर्म कौन करता है—एक, और क्या करता है दो, और किस लिए करता है तीन—कौन करता है? क्या करता है? किस लिए करता है? और प्रेम—कौन करता है, इससे कोई मतलव नहीं, क्या करता है, इससे कोई मतलब नहीं। किसके

लिए करता है—किससे प्रेम करता है, बस—भक्ति केवल उद्देश्य-प्रधान होती है ईश्वरके लिए। एक चण्डाल भी और एक सर्वोत्तम ब्राह्मण भी ईश्वरके लिए कर्म करता है। क्या करता है? झाड़ू लगाता है कि वेद पढ़ता है—इससे कोई मतलब नहीं। किसलिए करता है माने अपने लिए करता है? अपनेको कुछ पानेके लिए करता है क्या? नहीं—किसके लिए करता है। धर्ममें और भक्तिमें बड़ा भारी अन्तर है। इसमें करनेवाला कौन है, इसका विचार नहीं है। क्या करता है इसका विचार नहीं है। किसलिए करता है यह विचार भी नहीं है। किसके लिए करता है? आप जब अपने प्यारेके लिए कर रहे हैं तो आपका सारा कर्म, धर्म हो रहा है। फिर तो आप सततयुक्त रहेंगे।

प्यारेके लिए रोटी बेलें और वह गोल न हो! तिकोनी क्यों हो जायगी? उसको सेकें और किनारा बिना सिंका रह जावे, ऐसे कैसे हो सकता है? बीचमें जल जावे ऐसा कैसे हो सकता है? आपकी सारी सावधानी तो उसको सुख पहुँचानेके लिए है। न वह कहीं मोटी-पतली होगी, न कहीं जलेगी और न टेढ़ी होगी। सारा काम, सिर्फ रोटीकी ही बात नहीं है। आपका व्यापार, आपकी फैक्टरी आपका सारा व्यवहार, सारा मिलना-जुलना जब उसके लिए होने लगेगा—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। (९.२७)

आप हमेशा उसके साथ संयुक्त रहेंगे। संयुक्त रहेंगे-का अर्थ है कि पति-पत्नीको परस्पर प्रेयसी-प्रियतम—आजकलके युगमें पति-पत्नी न बोलकर, प्रियतम-प्रेयसी बोलना चाहिए। प्रेयसी-प्रियतमको परस्पर संयुक्त रहनेमें जो आनन्द आता है, वही आनन्द भक्तको प्रत्येक कार्य करनेमें आता है कि हम परमात्मासे आलिङ्गित हैं। हमने अपने हृदयसे परमात्माका आलिङ्गन कर

रखा है और परमात्माने अपने हृदयसे हमारा आलिङ्गन कर रखा है। भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

बोले भगवान् बुद्धि देते हैं—

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।
× × ×
अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च............ ॥ (६.९.१)

वेद भगवान् कहते हैं—भगवान्का दर्शन किसको हुआ? यह ऋग्वेद मन्त्र है। भगवान्को किसने देखा? बोले पनिहारिनोंने, जो यमुनाके तटपर पानी भरनेवाली हैं—गाय चरानेवालोंने भगवान्को देखा। आओ हमलोग उनका दर्शन करें।

भजतां प्रीतिपूर्वकम्, ददामि बुद्धियोगम्।

भगवान् बुद्धियोग देते हैं। कैसे मिलेंगे? कैसे मिलेंगे? यह कोई प्रश्न है? जब हमारे पास आये, अभिमान टूट गया। देखो विरहमें भी यह बात है। संयोगमें भी यह बात है। और विरह-वाली बात जो है वह लोगोंके लिए बहुत उपयोगी है। संयोगका अनुभव तो किसी-किसीको ही होता है। सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जिनको भगवान्के लिए व्याकुलता होती है; जिनके हृदयमें भगवान्के लिए रोना आता है, उनको संसारके लिए कभी रोना नहीं पड़ता। यदि आप भगवान्के लिए व्याकुल हैं तो संसारके लिए कभी रोना पड़ेगा ही नहीं। अद्भुत लीला है!

भागवतमें कहा है कि जो भगवान्की मायाका वर्णन करता है, उसको भगवान्की माया नहीं लगती। श्रीकृष्ण, यशोदा मैयाके सामने रोते हुए आँखसे काजल बहा रहे हैं—एक हाथ मैयाने पकड़ रखा है और एक हाथसे अपनी आँख मल रहे हैं—जो ऐसे

रोते हुए भगवान्‌का ध्यान करेगा तो उसको रोना नहीं पड़ेगा। अद्भुत है—रोनेका करो ध्यान, तुम्हें रोना नहीं पड़ेगा और नहीं तो तुम लगो रोने और देखो भगवान् को—दोनों अँगूठा दिखाकर ली-ली-ली-ली करते हुए। आये—बस, इतनेमें ही आगयी हँसी। रोते हुएको हँसा दिया—आकर हँसा दिया ऐसे भजतां प्रीति-पूर्वकम् ददामि बुद्धियोगम्।

आगये पास जब पास आये तो भगवान्‌ने देखा, इसके पास तो कुछ है ही नहीं—प्रीतिकी रीति यह है। कुछ है नहीं तब—आओ कुछ बरस दें। बलिने वामनसे कहा कि मैं एक बार तुम्हें दूँगा, फिर क्या तुम दूसरेके पास माँगनेके लिए जाओगे? नहीं, जब तुम मेरे पास आगये तो अब तुम्हें कहीं भी याचना नहीं करनी पड़ेगी। कहीं भी माँगना नहीं पड़ेगा। दुनियामें किसीसे माँगिये मत। और यदि माँगना हो तो जानकीके जो प्राणपति हैं, उनसे माँग लीजिये, क्योंकि उनसे माँग लेनेके बाद याचना ही जल जाती है।

जब भगवान् देखते हैं—उनके पास जाकर माँगनेका मन भी नहीं होता। उनसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। जिस वरसे बढ़िया वर दूसरा नहीं है। ईश्वर है न! ईश्वरमें वर तो है ही। वरेण्य है। जिस वरसे बढ़िया दूसरा वर नहीं है—उसके पास हम गये और वह कहे कि हम तुम्हारा किससे ब्याह करवा दें? अरे बाबा, जो सबसे बढ़िया वर है, उसके सामने तो हम आगये। अब तुम दूसरेसे ब्याह करानेकी क्या बात करते हो?

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।

अनुकम्पा बरस पड़ी क्योंकि प्रेममें अभिमान नहीं होता है। अनुकम्पाका अर्थ कम्पन है। दयापात्रका हृदय जो थरथर-थरथर

काँप रहा है, उसके पीछे भगवान्‌का हृदय भी वैसे ही काँपने लगता है। क्योंकि भगवान्‌का अपना हृदय नहीं है। भगवान्‌का हृदय ही अपना हृदय है। इसके लिए हम वेदान्तियोंकी गवाही दे सकते हैं। वे कहते हैं—कार्योपाधि जीवमें है। कार्योपाधि परमेश्वरमें है ही नहीं।

कार्योपाधिः जीवः, कारणोपाधिः ईश्वरः।

भगवान्‌के पास अपना दिल नहीं, भक्तके दिलको ही भगवान् अपना दिल मानते हैं, और जब भक्तका दिल काँपने लगता है तो भगवान् स्वयं काँपने लगते हैं। यही उनकी अनुकम्पा है। भक्तके काँपनेके पीछे काँपनेका नाम अनुकम्पा है। प्रेम बरस पड़ा, रस बरस पड़ा, आनन्द बरस पड़ा।

अब दो बात सुनाता हूँ—गोपियोंके सारे बन्धन टूटकर गिर गये। कर्मका बन्धन, वासना का बन्धन, अज्ञानका बन्धन सब-के-सब टूटकर गिर गये। कैसे गिरे? जब श्रीकृष्णके विरहका अनुभव करती हैं, गोपियोंमें इतना ताप होता है, इतना ताप होता है कि उस विरह-नादको देखकर त्रिलोकीका त्रैकालिक ताप—तीनों लोकोंमें कभी भी बड़ा-से-बड़ा दुःख हुआ हो, वह दुःख थरथर काँपने लगा—अरे कृष्णके विरहमें इतना दुःख! सारे पाप भस्म हो गये। अब हम उनको और क्या दुःख देंगे? ये तो कृष्णके विरहमें ही इतनी दुःखी हैं और उनका कर्म जल गया। उनकी वासना जल गयो। उनका अभिमान जल गया। उनका अज्ञान जल गया।

कृष्णके साथ आया आनन्द, ध्यानमें मिला आलिङ्गन—श्रीकृष्णने अपने हृदयसे लगा लिया, इतना आनन्द हुआ गोपीको! इतना आनन्द हुआ कि त्रिलोकीके जो त्रैकालिक पुण्य हैं, तीनों

लोकमें जितने जीव हुए हैं और उन्होंने जितना पुण्य कभी किया है, कर रहे हैं, करेंगे—सबने देखा—बोले हम सब मिला सकें तो क्या जीवको इतना आनन्द दे सकेंगे ? बोले नहीं—हम तो इतना आनन्द नहीं दे सकते। तो सबका अभिमान टूट गया। सारे पुण्य क्षीण होकर गिर गये। सारा मङ्गल, सारा पाप, सारा पुण्य क्षीण हो गया और भगवान् मिल गये।

विरहमें अभिमान नहीं रहता है, विरहमें तो अभिमान हो ही नहीं सकता। संयोगमें भी अभिमान नहीं हो सकता। यह है प्रीतिकी रीति निराली। भगवान्की अनुकम्पा, भगवान्की कृपा, भगवान्की दया ! अब क्या करते हैं ? बल्ब जलाते हैं, मसाल जलाते हैं, दीपक जलाते हैं। भगवान्ने कहा किसलिए ? तो तुमको देखनेके लिए। अन्धेरेमें तुम दीखते नहीं हो, मैं रोशनी जलाकर तुम्हें देखूँगा और बोले तुम बैठे रहो, पलङ्गपर लेटे रहो—मैं अपने आप ही रोशनी कर देता हूँ। मैं बटन दबा दूँगा, मैं मसाल जलाऊँगा, मैं दीपक दिखाऊँगा।

अहम् अज्ञानजं तमः नाशयाम्यात्मभावस्थः।

यह अज्ञानजनित जो 'तमः' है, अन्धकार है, इस अज्ञानको मिटानेके लिए तुमको कुछ नहीं करना पड़ेगा। न कर्म, न उपासना, न योग, न विवेक, न वैराग्य, न समाधि—तुमको कुछ करना नहीं पड़ेगा। मधुसूदन सरस्वतीजी ने गीताके श्लोककी व्याख्यामें कहा है कि बिना कर्मके, बिना उपासनाके, बिना योगके, जब कृपा आयी, अनुकम्पा आयी तब यह देखना धर्म है कि कोई विवेकी है कि नहीं—वैराग्यवान् है कि नहीं ?

कृपा-पात्रकी योग्यता यही होती है कि वह निःसाधन है। कृपा-पात्रकी योग्यता साधनाकी नहीं होती है, कृपा-पात्रकी योग्यता

तो उसकी निःसाधनता है। नहीं तो आप कुब्जाके पूर्वजन्मकी कथा ढूँढें। कुब्जाने पूर्व जन्ममें कौन-सी ऐसी साधना की थी कि वह कुब्जा हो गयी और भगवान्‌ने उसको अपना लिया। अत्यन्त निःसाधन ही नहीं, कु-साधन-सम्पन्न थी कुब्जा। अजामिल था, कु-साधन-सम्पन्न। परन्तु नामने उसका उद्धार किया। कुब्जा थी अत्यन्त कु-साधन-सम्पन्न किन्तु भगवान्‌के रूपने उसका उद्धार किया। भगवान्‌के नाम और रूपकी यही महिमा है। जैसा नाम वैसा रूप।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थः।

कहाँ बैठकर मसाल दिखाते हो? 'आत्मभावस्थः।' उसके हृदयमें उसके आत्माके रूपमें ही बैठकर और वहींसे अपने ज्ञानका प्रकाशमय दीप लेकर मैं दिखाता हूँ। अज्ञानका नाश हुआ। 'तमः'का नाश हुआ। परमात्माका प्रकाश हुआ। इसमें विभूति भी है और इसमें योग भी है। इसमें अज्ञानका जो नाश है यह विभूति है और इसमें जो नाश करनेवाला आत्मभावस्थ है वह योग है। भगवान्‌का हमारे हृदयमें वैठ जाना, यह योग है और वैठकर हमारे अज्ञानान्धकारका नाश करना, यह विभूति है।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥

यह संसार भगवान्‌की विभूति है और हमारी आत्माके रूपमें भगवान्‌का योग है, चाहे जहाँ रहो, चाहे जब रहो, चाहे जिस रूपमें रहो, चाहे जो करते रहो। प्रेमसे करो, उसके लिए करो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●

प्रवचन—९

(१८-११-८०)

भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

प्रेमसे भगवान्‌का भजन करो। अभी आप लोगोंने स्वरके साथ, संगीतके साथ वेद-मन्त्रोंका पाठ सुना। श्रीकृष्णकी महिमा, उनका सौन्दर्य उनका माधुर्य श्रवण किया। आनन्द आया। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि कोई जानकार हो, न-हो अपनी समझमें आवे-न-आवे ईश्वरका नाम संगीतमें सुनकर आनन्द आता है। न समझा हुआ भी संगीत जब कानोंमें पड़ता है हृदयमें आनन्दका झरना वहने लगता है। बड़ा आनन्द आया, प्रसन्नता हुई। फिरसे सुननेको मिलेगा। अब आपको गीताकी बात सुनाते हैं। आप कहोगे कि श्लोक एक ही वार-बार दुहरा देते हैं।

मच्चिताः माने हमारा अध्यात्म भगवान्‌में लग गया है। हमारा मन, हमारो वुद्धि भगवान्‌में लग गयी। **मद्गतप्राणाः** माने हमारा जोवन और हमारी क्रिया—प्राणसे क्रिया, मतलब है— भगवान्‌को समर्पित है। **बोधयन्तः परस्परम्** माने एक दूसरेको वुद्धि दान कर रहे हैं। वह इनको समझा रहा है, यह उनको समझा रहा है, भगवान्‌के वारेमें। **कथयन्तश्च मां नित्यम्**— परस्पर नहीं समझा रहे हैं, अकेले ही कोई कथन कर रहा है। एक हुआ मन, वुद्धिका भगवान्‌में लगना, **मच्चिता**—अन्तरङ्ग हो गया। मद्गतप्राणा—जीवन भगवान्‌के लिए हो गया। क्रिया सारी भगवान्‌के लिए और **बोधयन्तः परस्परम्**—दो, तीन, चार मिलके एक दूसरेको समझाते हैं। सामूहिक हो गया और **कथयन्तश्च मां नित्यम्**—वक्ता एक है और श्रोता अनेक हैं। यह हो गयी

भक्तिकी साधना। अब इसमें यह बात बतायी कि तुष्यन्ति च रमन्ति च।

जैसे संसारमें लोगोंको धनकी प्राप्तिसे सन्तोष होता है वैसा सन्तोष भगवान्‌में मन, बुद्धि लगानेसे, भगवान्‌के लिए जीवन व्यतीत करनेसे, क्रिया करनेसे, समझने-समझानेसे और भगवत्-सम्बन्धी चर्चा करनेसे प्राप्त होता है और रमन्ति च—ससारमें जैसे कोई प्रेम हो—तो घण्टे-आध-घण्टे चुप भी रहें तो जहाँसे प्रेमकी बात आरम्भ होती है, वहींसे फिर शुरू हो जाती है। अपना किसीसे प्रेम हो, उससे बात करें तो घण्टे-आध-घण्टे बाद उसीकी चर्चा करेंगे। भीतरमें उसका ख्याल चलता रहता है। रमन्ति च—जैसे प्रेयसी, प्रियतम एक-दूसरेके साथ रम जाते हैं। वैसे भगवान्‌में वे रम जाते हैं। धनप्राप्ति अथवा कामप्राप्ति होनेपर जैसा आनन्द होता है। वैसा ही भगवान्‌में आनन्द आता है। गोस्वामीजीने कहा—'न कामी नारि पियारी जिमि'—यह रमन्ते च का अर्थ हो गया और 'लोभी पिय जिमि दाम' यह तुष्यन्ति च का अर्थ हो गया और च रमन्ति च चरमादवस्थाम् अनुभवन्ति—इसके आगे कुछ और नहीं है। बस, इसीसे सन्तुष्ट हैं।

अब भगवान्‌ने देखा कि ये तो प्रीति और प्रीतिपूर्वक भजनमें डूब गये। इनको कोई ज्ञान ही नहीं—न शरीरकी याद है, न घरकी याद है, न संसारकी याद है तो बोले भाई, इन्होंने तो अपना सर्वस्व हमको दे दिया। अब हमको भी कुछ करना चाहिए। भगवान् केवल लें ही लें—गोस्वामीजीने तो एकांगी प्रेमका बहुत महत्त्व गाया है। पर ब्रजने एकांगी प्रेमका बहुत महत्त्व नहीं माना है। जैसा प्रेम हम भगवान्‌से करते हैं, वैसा ही प्रेम भगवान् भी हमसे करते हैं। जब हम भगवान्‌के लिए रोते हैं तो भगवान् भी हमारे लिए रोने लगते हैं। जब हमें भगवान्‌के लिए नींद नहीं

आती तो भगवान्को भी हमारे लिए नींद नहीं आती। यह भागवतमें है—

> तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि।
> वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः॥ (१०.५३.२)

जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लग गया है, वैसे ही मेरा चित्त भी रुक्मिणीमें लग गया है। रातको हमें नींद नहीं आती है। तारे गिन-गिनकर रात बिताता हूँ, रुक्मिणीके लिए। ऐसे भगवान् हैं। दूसरे मजहबमें ऐसे भगवान् नहीं हैं, जो अपने भक्तके लिए तारे गिनते हों। हम किसी मजहबपर आक्षेप नहीं करते हैं, पर यह निश्चित है कि भगवान् हैं ही नहीं ऐसे किसी मजहबमें !

झर-झर आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं भगवान् कृष्णके। हमारा भगवान् प्रेमको एकाङ्गी रखने ही नहीं देता।

> **ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**

जब कोई भक्त भगवान्का नाम लेने लगता है तो भगवान् भी भक्तका नाम लेने लगते हैं। आपने रामचरितमानसमें सुना होगा। रामचन्द्र 'भरत भरत'का जप करते हैं। जग जपु राम राम जपु जेही। जगत् राम-रामका जप करता है और भगवान् भरत-भरतका जप करते हैं। कौन बड़ा? 'राम-राम' बड़ा है कि 'भरत-भरत' बड़ा है? 'जग जपु राम राम जपु जेही। जब भगवान् देखते हैं कि हमारा भक्त हमारे प्रेममें मग्न हो गया।

> तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
> ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

सततयुक्तानाम्—वह और किसीके साथ जुड़ता ही नहीं है, भगवान्के साथ निरन्तर जुड़ जाते हैं और प्रीतिपूर्वक भजन करते हैं। भजन करते हैं अर्थात् हमें रस देते हैं और हमसे रस लेते हैं।

यह परस्परकी प्रीति है। ये जो सामान्य भक्त होते हैं, वे केवल भगवद्रसका आस्वादन करते हैं। और जो उत्तम कोटिके भक्त हैं वे भगवान्‌को रस देते हैं। पर जितना-जितना रस देते हैं, उतनी ही उनकी रसकी वृद्धि होती है।

श्रीराधारानीको देखकर श्रीकृष्णके बढ़ते हुए आनन्दको देखकर श्रीराधारानीका आनन्द बढ़ता है। श्रीराधारानीका बढ़ता हुआ आनन्द देखकर श्रीकृष्णका आनन्द बढ़ता है। दोनों अपने व्यक्तित्वको भूल जाते हैं, व्यक्तित्व आनन्दमें समा जाता है और आनन्द-ही-आनन्द, रस-ही-रस, प्रेम-ही-प्रेम। भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

अब भगवान्‌के मनमें आया कि इसने जो इतने प्रेमसे मेरा भजन किया—अब हम इसको क्या दें? प्रेमी लोगोंकी बुद्धिके बारेमें जरा शङ्का होती है। बुद्धिको रखकर प्रेम नहीं करते हैं। चितरञ्जनदासने बँगलामें एक पद लिखा था। हिन्दीमें उसका अनुवाद ऐसा हुआ।

'चतुराई, चेतना सभी चूल्हेमें जावे।
बस मेरा मन एक ही आश्रय पावे॥

आग लगे आचार विचारोंके उपचयमें।
उस प्रभुका विश्वास सदा दृढ़ रहे हृदयमें॥'

जीवन भर नास्तिक रहे और जीवनकी अन्तिम सन्ध्यामें आस्तिक हो गये। भगवान्‌के भक्त हो गये। ये भक्त जब प्रेमके समुद्रमें डूबते हैं, तो उनका आचार-विचार भूल जाता है तो भगवान्‌ने कहा कि इनकी बुद्धिकी जिम्मेवारी हमारे ऊपर आगयी। ददामि बुद्धियोगं तम्। भगवान् बुद्धियोग देते हैं। यह दोनों तरहसे होता है। पहले बुद्धियोग आवे फिर मच्चित्तता आवे।

बुद्धियोगम् उपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि—जो बुद्धियोगी होगा, उसका मन भगवान्‌में जरूर लगेगा। और जो अपना मन प्रेमसे भगवान्‌में लगावेगा, उसको बुद्धियोगकी प्राप्ति होगी। उसको वह अक्कल आ जावेगी, वह बुद्धि आ जावेगी, जिससे वह भगवान्‌के पास पहुँच जाय। बहुत बढ़िया बात भगवान्‌ने कही। इसके बाद जो भगवान्‌ने बात उठायी वह और बढ़िया है—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

'तेषाम् एव भजताम् एव—'तेषाम्' पदका जो अन्वय है वह 'प्रीतिपूर्वकम् भजताम्' के साथ है और 'तेषां माम् उपयातानाम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन माम् उपयान्ति ते। बुद्धियोगेन मां उपयातानाम् एव।' एक अर्थ ऐसे होगा और एक अर्थ होगा—'प्रीतिपूर्वकम् भजतां एव तेषाम्। भजतां तेषाम् एव।'

जो प्रेमपूर्वक प्रीतिसे तृप्त होकर भजन करता है, प्रीति माने तृप्ति। तो प्रीतिके दो अङ्ग होते हैं। एक प्यास और एक तृप्ति—जो प्यासे होकर भजन करते हैं—जैसे मरुस्थलमें। पानी, पानी, पानी—प्रभु, प्रभु, प्रभु। और एक जैसे बंगाली रसगुल्ला खाकर तृप्त होवे—बङ्गाली लोग तो बोलते भी इतना मीठा हैं जैसे उनके मुँहमें रसगुल्ला भरा हो—'तेषामेव प्रीतिपूर्वकम् भजताम्' जो प्रीतिपूर्वक भगवान्‌का भजन करते हैं—व्याकुलता और तृप्ति। तृप्ति होती रहे और प्यास लगी रहे। दोनों एक साथ चाहिए।

महात्माका स्वरूप क्या है ? कृष्ण-तृष्णा मूर्तिमती हो गयी। महात्मा है कृष्णकी तृष्णा—कृष्णविषया तृष्णा। कृष्णकी प्यास लगी है। हमको कौन चाहिए ? कृष्ण चाहिए, कृष्ण चाहिए।

शङ्कराचार्यने कहा कि जब कृष्णकी तृष्णा आती है तब संसारकी सारी तृष्णा मिट जाती है। गङ्गाजीकी स्तुतिमें शङ्कराचार्यने कहा—

> भगवति तव नीरे नीरमात्राशनोऽहं
> विगत-सकल-तृष्णाः कृष्णमादधामि।
> सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
> तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद॥ (७)

सारी तृष्णाओंकी निवृत्ति हो गयी—कृष्णविषया तृष्णा—कृष्ण तृष्णा—कृष्णके लिए तृष्णा। अथवा महात्मा क्या है? कृष्णस्य तृष्णा। भगवान्‌के मनमें भी एक प्यास होती है। वह भगवान्‌के मनकी प्यास जब मूर्तिमती होती है तो महात्माके रूपमें आजाती है। स्वयं पेय बन जाते हैं और स्वयं पाता बन जाते हैं। स्वयं रस्य, स्वयं रसिक—वही रस देते हैं, वही रस लेते हैं। भगवान्‌के रूपमें भक्त और भक्तके रूपमें भगवान् उलटी बात हो जाती है—भक्त भगवान् हो जाते हैं और भगवान् भक्त हो जाते हैं। भक्त हो जाता है आनन्दका खजाना और भगवान् हो जाते हैं प्यासे, आनन्दके खजाने और भक्त हो जाता है प्यासा। भगवान्‌के पास जब आगये तब—

> तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।
> नाशयात्मात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

भक्तकी तन्मयता देखकर भगवान्‌के हृदयमें अनुकम्पाका उदय हुआ। जो अचल था वह चलित हो गया। जो निःस्पन्द था वह स्पन्दित हो गया। भगवान्‌का हृदय थर-थर-थर थिरकने लगा—नाचने लगा। भगवान्‌के हृदयमें भक्तके लिए नर्तन है, नृत्य है स्पन्दन है।

थोड़ी 'तेषामेव'की बात करते हैं। भगवान्‌की कृपा सबसे ऊपर क्यों नहीं होती ? उनके लिए तो सब हैं, सबपर कृपा होनी चाहिए। इस प्रश्नका उत्तर दूसरे मजहबोंमें नहीं है। हम सब मजहबोंको मानते हैं और सबकी प्रशंसा करते हैं और सब मजहब-वालोंको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। लेकिन जब दोनोंका विश्लेषण करना पड़ता है, तब अलग-अलग करके बताना पड़ता है।

भगवान्‌ने किसी एकपर कृपा क्यों की ? एकको सुखी बना दिया, एकको दुःखी बना दिया। एकको धनी बना दिया, एकको गरीब बना दिया। एकको काला बना दिया, एकको गोरा बना दिया। यह विषमता भगवान्‌में क्यों ? जैन और बौद्ध तो ईश्वरकी चर्चा नहीं करते हैं। वे तो अपने अनेक तीर्थङ्करोंको और अपने बुद्धोंको ही परमेश्वरके स्थानपर रखते हैं। अनेक होते हैं तीर्थङ्कर और अनेक होते हैं तथागत। ये तो इस विषमताको कर्ममूलक मानते हैं। अनादि कालसे यह सृष्टि चल रही है और कमके अनुसार कोई सुखी कोई दुखी, कोई काला कोई गोरा कोई धनी कोई गरीब होता है। जैन और बुद्ध दोनों धर्मोंमें कर्ममूलक विषमता मानी जाती है।

ईसाई और मुसलमान इस विषमताको खुदाकी मौज मानते हैं। मौज माने तरङ्ग—मूड ! यह ईश्वरका मूड है कि चाहे जिसको गरीब बना दे। चाहे जिसको धनी बना दे और चाहे जिसको सुखी बना दे, चाहे जिसको दुःखी बना दे। यह मौज है—तरङ्ग है—उसके चित्तका उल्लास है। लगता है जैसे खुदा बहुत मूडी हो। सनातन, वैदिक धर्मने इसकी व्यवस्था ऐसे बैठायी कि—

वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति।

(ब्रह्मसूत्र २.१.३४)

कहनेका अभिप्राय यह है कि ईश्वरमें विषमता और निर्दयता

नहीं है। वह किसीका पक्षपात करे और किसीके साथ क्रूरता करे, ऐसी उस परमेश्वरकी मौज नहीं हो सकती। जिस जीवने कभी कुछ किया ही नहीं, उसको विना किये सुख-दु:ख भोगनेको मिल रहा है और जो इस जन्ममें कर रहा है, उसका अगले जन्ममें नहीं मिलेगा तो उसके किये हुएका नाश हो जायेगा और विना किये हुएका आगमन होगा। दोष तो प्राप्त होंगे जीवोंको, और ईश्वरने किसीका क्यों पक्षपात किया ? किसीको क्यों दु:ख दिया, किसीको क्यों सुख दिया ? तो यह पक्षपात—क्या कोई अपने रिश्तेदार थे कि उनको सुख दे दिया—क्या कोई अपने दुश्मन थे कि उनको दु:ख दे दिया ? नहीं, भगवान्में पक्षपात और क्रूरता नहीं है। क्योंकि 'सापेक्षत्वात्' कर्म तो जड़ है—स्वयं अपना फल नहीं दे सकता। न अपने कर्ताको पहचान सकता है और न क्या फल दें यह उसको ज्ञान हो सकता है—इसलिए युक्तिसंगत मत यही है कि कर्मका फलदाता ईश्वर होवे। जिसका जैसा कर्म होता है, उसको वैसा फल देता है।

हमारे जो भक्त हैं, उनका कर्म क्या है ? **भजतां प्रीतिपूर्वकम्**—प्रेमसे भगवान्का भजन करना। जो प्रेमपूर्वक भजन करते हैं, मैंने उनको बुद्धियोग दिया और बुद्धियोगके द्वारा मेरे पास पहुँचे। यह बुद्धियोग तो बहुत बढ़िया वस्तु है। यह जो तीसरी बात बता रहा हूँ वह किसी भी मजहबमें नहीं है। ऐसा बुद्धियोग होता है कि पाप-पुण्य दोनों यहीं नष्ट हो जावेंगे। न आगे नरकमें जाना पड़ेगा, न स्वर्गमें जाना पड़ेगा। **बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।** जिसको बुद्धियोग प्राप्त हो जाता है वह सुकृत-दुष्कृत माने पाप और पुण्य लेकर अपने साथ नहीं जाता। मुक्त हो जाता है। ऐसी मुक्ति और कहीं नहीं है। अद्भुत है। जिसने भजन किया वह भी कयामतके दिनतक कबरमें रहे और फिर वहाँसे निकले तो स्वर्गमें जावे—ना बाबा यहीं लो ! पाप-

पुण्य दोनों और पापका फल और पुण्यका फल—दोनों यहीं छोड़नेकी रीति गीतामें है।

> कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
> जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ (२.५१)

तो यह बुद्धियोग है। बुद्धियोग भगवान् देते हैं। ठीक है, अब इन्हींके ऊपर भगवान्‌की कृपा उतरी—दो विभाग कर दिये—एक तो बुद्धियोग प्राप्त करके भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं और जिनको बुद्धियोग पसन्द नहीं आया और चित्त द्रुत नहीं हुआ—अद्रुत चित्त है, उनको तो बुद्धियोगने ठीक कर दिया। लेकिन जिनका चित्त द्रुत है और बुद्धियोगको स्वीकार नहीं करते, उनको भी कुछ नहीं चाहिए।

मैं चाहे अन्नमय कोश हूँ या प्राणमय कोश हूँ—इससे हमारा कोई मतलब नहीं—हमारे ऊपर सद्‌गुण हैं कि दुर्गुण हैं, इससे कोई मतलब नहीं—मैं जैसा था, हूँ, होऊँगा वह सब आज अभी आपके चरणोंमें समर्पित है। भगवान्‌ने कहा—यह तो हमारी चीज है, हमारी वस्तु है, इसमें कोई दोष होगा तो सेवकका दोष तो स्वामीका दोष माना जाता है। मैं ही दोषी हो जाऊँगा।

श्रीरामचन्द्र भगवान्‌ने कहा—

> परं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम्।
> भृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्डयिष्यते॥

यदि भृत्यसे, सेवकसे अपराध हो जावे तो स्वामीको दण्ड देना चाहिए। विभीषणसे अपराध हुआ—रावण मर गया तो इसका दण्ड मुझे मिलना चाहिए। पद्मपुराणमें कथा है। भक्तने तो अपने आपको भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दिया तो भगवान् अनुकम्पा करेंगे ही। भागवतमें जहाँ ऐसा कहा गया है—वहाँ

उसका दो अर्थ किया जाता है—श्रीधर स्वामीने जगह-जगह दो अर्थ किये हैं। 'अनुकम्पायै अर्थाय च—अनुकम्पार्थम्'—अनुकम्पा और अर्थ दोनों। दोनोंका मतलब क्या हुआ ? अनुकम्पा परम-प्रेमाविर्भावः अर्थः मत्प्राप्तिः—मेरे परम ज्ञानका आविर्भाव हो जावे—उसके हृदयमें इसके लिए मैं उससे मिल जाऊँ। दोनों—कृपा भी आयी और वस्तु भी आयी।

एक बार आनन्दमयी माँने विचित्र खेल किया। नैमिषारण्यमें मैंने श्रीमद्भागवत सुनाया, पूरा पन्द्रह दिनोंमें चार घण्टे रोज। वे एक सिंहासनमें शालिग्रामकी मूर्ति रखकर अपने सिरपर लेकर आयीं, बोलीं—पिताजी, मैं आपको यह दक्षिणा देनेके लिए आयी हूँ। दक्षिणा लीजिये—सिंहासन और शालिग्राम-शिला। मैंने अपने हाथमें सम्हालना चाहा तो माँने कहा कि पिताजी—इस दक्षिणाके साथ मैं अपने आपको भी देती हूँ। अब इससे बढ़िया और क्या होगा ? यह भगवान् जब अपने भक्तको अपनी कृपा अर्पित करते हैं तो केवल कृपा ही अर्पित नहीं करते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थः ज्ञानदीपेन भास्वता॥

उनके आत्मभावमें मैं स्थित हो जाता हूँ। आत्मभाव शब्दका दोनों अर्थ हुआ। उनके हृदयमें जो भाव है—उस भावमें भगवान् आकर बैठ जाता है। आत्मभावस्थ—भावमें भगवान् बैठे गये। भाव स्थायी भाव हो गया और जहाँ स्थायी भाव हुआ वहाँ हृदय रस हो गया। यह भावमें स्थायित्व न होनेसे ही रसानुभूति नहीं होती। साहित्यिक लोग इस बातको जानते हैं।

खूब कोमल हृदय हो, मक्खनकी तरह कोमल हृदय हो—और ममत्वातिशयसे अंकित हो, उसमें अतिशय ममत्वकी रति हो और बहुत गाढ़ा भाव हो तो उस भावका नाम है प्रेम। ये प्रेम

ही स्थायी भाव है। जहाँ भाव स्थायी हुआ वहाँ रस आया—आपके जीवनमें जो भजन करनेपर भी रस नहीं है—उसमें स्थायी भावकी न्यूनता है। भावमें स्थायित्व नहीं है।

हमारे एक महात्माने कहा—वृन्दावनमें तो रसका अनुभव होता है—जब श्रीकृष्ण और बलराम मथुरामें गये तो ग्वालवालोंकी मण्डलीके साथ नृत्य कर थे। मथुरामें प्रवेश कर रहे थे। मथुराकी स्त्रियाँ—आगयीं—छज्जेपर—सड़कपर—दरवाजे पर—निकलकर जब राम-श्यामकी मण्डली नृत्य करती थी—तब वे श्यामको देखें, तब वे कहें यह हमारा प्यारा है, वहुत प्यारा है, वहुत मधुर है। हमको तो यही चाहिए। परन्तु जब नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण दूसरी ओर जायँ और उधरसे गौर सुन्दर नीलाम्बरधारी राम आजायँ सामने तो कहें—अरे यह हमारा प्यारा है। तो स्थायी भाव ही न हो। न श्याममें स्थायी हो, न राममें स्थायी भाव हो। रसानुभूति कहाँसे होगी?

जब चित्त इतना चञ्चल होगा तो रसकी अनुभूति कहाँसे होगी? स्थायी भाव आगया—भक्तको मेरे सिवाय कुछ सूझता ही नहीं है। अज्ञानान्धकार कैसे दूर होगा? तो बोले हमको मसालची बनना पड़ता है। क्या बढ़िया है? जिसके घरमें हम जाना चाहते हैं। जिससे मिलना चाहते हों—जिसके लिए व्याकुल हो रहे हों, जिसके स्मरणसे तृप्ति हो रही हो, जिसके देखनेके लिए हमारी यह यात्रा है, वही यदि हमें रास्ता दिखानेके लिए हमारे सामने आजाय तो इससे बढ़कर और क्या आनन्द होगा? **आत्मभावस्थः**—ज्ञान दीपक दिखाते हैं—परन्तु कहाँ बैठकर दिखाते हैं—आत्मरूपमें बैठकर दिखाते हैं—आत्मभाव माने भावना नहीं—आत्म सत्ता–आत्मरूपसे बैठकर ज्ञानदीपक दिखाते हैं। भागवतमें इसकी व्याख्या है—

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥ (४.२९.४६)

जब आत्मभावसे भावित भगवान् अनुग्रह करते हैं तब हमारा ही ग्रह उनका ग्रह हो जाता है। अनुग्रहका अर्थ यह होता है कि हमारे भक्तका जो ग्रह है, वही हमारा ग्रह है। ग्रह माने ग्रहण। हम एक ही राशिके हैं भाई! एक ही तरहके हमारे ग्रह हैं। यज्ञ-यागमें सोमपान करते हैं। जिस प्यालेमें लेकर सोमपान करते हैं, वह ग्रह होता है—तो अनुग्रहका अर्थ यह हुआ कि जिस प्यालेमें भक्त पी रहा है, उसी प्यालेमें भगवान् पी रहे हैं। क्या अद्भुत ग्रह है!

ग्रह माने हमारा मतलब आकाशके ग्रहोंसे नहीं है। ये तो ज्योतिषियोंके लिए होते हैं। हमलोगोंको तो धरतीपर पाँव रखकर चलना है न! अपनेको हम ऐसा बना सकते हैं—जैसे आकाशसे वर्षा होती है तब हम छाता लगा लेते हैं—बरसाती पहन लेते हैं। तो बर्षा बन्द नहीं होती है, हम वर्षासे बच जाते हैं। जो ग्रहोंकी पूजा-पाती होती है वह यह नहीं कि ग्रहकी स्थिति या गति बदल जाय और दुनियापर जैसा उसका प्रभाव पड़ रहा है वह न पड़े। हम अपनेको सुरक्षित कर लेते हैं। उस ग्रहके प्रभावसे अपने आपको मुक्त कर लेते हैं।

भगवान्‌ने कहा कि तुम्हारे साढ़े साती शनैश्चर है—हमारे भी साढ़े साती शनैश्चर है। माने तुम नरकमें रहोगे तो हम नरकमें रहेंगे। तुम वनमें रहोगे तो हम वनमें रहेंगे। तुम भूखे रहोगे तो हम भूखे रहेंगे। तुम्हारे दुःखमें हम भी दुःखी रहेंगे। तुमको हम छोड़कर कहीं जानेवाले नहीं हैं। यह लो अनुग्रह। जब भगवान् अनुग्रह करते हैं—कैसे? आत्मामें बैठकर। तब फिर वेद-निष्ठा, लोक-निष्ठा इन दोनोंको कोई जरूरत ही नहीं रहती है। यह भागवतका श्लोक है।

स जहाति तदा लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्।

सब निष्ठा छूट गयी। एक निष्ठा आगयी। 'अनुकम्पार्थम्'—अब भगवान्‌ने क्या किया? बोले—भगतराज, चले आओ—चले आओ!

एक बात सुनाता हूँ—हमको किसीसे मिलने जाना था। लम्बी यात्रा थी २४ घण्टे रेलगाड़ीमें रहना था। पहचान बिल्कुल नहीं थी। चिट्ठी-पत्री बहुत थी। चिट्ठी-पत्रीमें तो खूब-खूब प्रेम था। पर देखा-देखी नहीं थी। दिल्लीमें मैंने थर्डक्लासके डब्बेमें चढ़नेकी कोशिश की तो एक सज्जन बोले आइये-आइये और अपने पास बैठा लिया। उन्होंने पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं। मैंने उन्हें शहरका नाम बताया—बोले अच्छा आप वहाँ जा रहे हैं, मैं भी वहीं जा रहा हूँ। अच्छा, वहाँ किसके पास जा रहे हैं? मैंने नाम बताया—बोले हाँ-हाँ मैं खूब जानता हूँ। आइये बैठिये! महाराज, चौबीस घण्टेकी यात्रा—हमको वे पानी पिलावें। हमको वे खानेको दें। हमारे सोनेका प्रबन्ध करें। जब उनके स्टेशनपर गाड़ी पहुँची तो उनको लेनेके लिए लोग आये—बड़ा आदर, बड़ा सत्कार हुआ। मैंने लोगोंसे पूछा ये कौन हैं? नाम बताया—वही जिनसे मैं मिलनेके लिए जा रहा था।

जहाँसे हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई—वहीं तो हमको मिल गये और हमको प्रेमसे सुलाया, हमको खिलाया, हमको पिलाया, हमसे बातचीत की, प्रेम किया पर यह नहीं बताया कि मैं वही हूँ। यह भगवान्—**अहमज्ञानजं तमः नाशयात्म्यात्मभावस्थः**—हृदयमें आकर बैठ जाते हैं, हमारे साथ हो जाते हैं। हमारी आत्माके रूपमें ही हो जाते हैं और **ज्ञानदीपेन भास्वता**। परम प्रकाश-स्वरूप ज्ञानदीपक लेकर **अज्ञानजं तमः** अज्ञान जनित अन्धकार जिसके कारण हम भगवान्‌को देख नहीं पाते हैं, पहचान नहीं पाते हैं, उस अन्धकारको स्वयं भगवान् ही नष्ट कर देते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

●

प्रवचन—१०

(१९-११-८०)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

इतनी बात कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। इसमें यह कहा गया कि जब भगवान्‌की बड़ी कृपा होती है तब वे हमारे अज्ञान-जन्य अन्धकारको, भ्रमको नष्ट करते हैं। यह बात बड़े-से-बड़े वेदान्तियोंने स्वीकार की है। दो ग्रन्थोंका नाम लेता हूँ, एक तो खण्डन खण्ड-खाद्य जो श्री हर्षकी रचना है। वेदान्तके उच्च-कोटिके शिखर ग्रन्थोंमें उसकी गणना है। और एक अवधूत-गीता, फक्कड़ोंकी पुस्तकमें, फकीरोंकी पुस्तकमें वह सर्वोपरि मानी जाती है। दोनोंमें ही यह बात आयी कि—

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महाभयपरित्राणा द्वित्राणामुपजायते ॥

ईश्वरके अनुग्रहसे ही मनुष्यके हृदयमें अद्वैत वासनाका उदय होता है। यह ईश्वरके अनुग्रहकी पहचान है। अभिज्ञान है। हमारे ऊपर ईश्वरकी कृपा हो रही है? हाँ हो रही है। कैसे हो रही है? हमारे हृदयमें अद्वैतकी भावनाका उदय हो रहा है। **महद्भयपरित्राणा**—इससे जो संसारके जन्मका, मरणका महान् भय है, उससे रक्षा हो जाती है। परन्तु **द्वित्राणामुपजायते**—केवल दो-तीन व्यक्तियोंको होती है। किसी-किसीके हृदयमें अद्वैत भावनाका उदय होता है, नहीं तो अधिकांश किसी-न-किसी सङ्कीर्ण भावनाके वशमें हो जाते हैं। अद्वैत वासना सङ्कीर्ण वासना

नहीं है, उदोर्ण वासना है। जिसमें अपने-परायेका कोई भेद ही नहीं होता। यह भगवान् सबको नहीं देते हैं, किसी-किसीको देते हैं।

मन्मया मामुपाश्रिताः बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। (४.१०)

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥ (५.१७)

भगवान् स्वयं कहते हैं कि अपुनरावृत्ति, माने मुक्ति—जन्म-मरणसे छुटकारा—ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः। ज्ञानके द्वारा जो कल्मषको धो डालते हैं, जिनका हृदय शुद्ध होता है, उन्हींको तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। अब आओ—तेषामेवानुकम्पार्थम्। एक बार फिर दुहरा लें। तेषामेव—जो भगवान्की भक्ति करते हैं, भजन करते हैं—बड़े प्रेमसे उनको पहले भगवान् बुद्धियोग देते हैं। माने ऐसी बुद्धि देते हैं, जो भगवान्की ओर ले जाय। नहीं तो मनुष्यकी बुद्धि मायाकी ओर जाती है, भगवान्की ओर नहीं जाती। भगवान् ऐसा करें तो बुद्धि उनकी ओर जाती है।

जैसे जादूका खेल देखकर आते हैं, जादूगरको पहचानते ही नहीं। नाटक देखकर आते हैं—नटसे पहचान नहीं होती है। नटके अनेक रूप देख लेते हैं। अनेक क्रिया देख लेते हैं परन्तु नटसे पहचान नहीं हाती है। नट कौन है? सिनेमाके परदेपर रोशनीमें जो नाच रहा है। माने एकके बाद एक, एकके बाद एक सैकड़ों चित्र जिसके उभर रहे हैं, वह नट है।

हमारे एक फकीरने जैसे अश्लील भाषामें बोलें वैसे कहा—

वेश्या किया सिंगार। बैठी बीच बजार॥
न जाने कब को आवै। ले खसम को नांव॥
खसम कौन परिचय नाहीं।

वह अपने पतिका नाम तो लेती है, पर पतिको पहचानती नहीं है।

यह जिसका नाटक है वह सबका परम पति है, परमेश्वर है, प्रभु है, उससे पहचान नहीं हुई, तो यह सारा ज्ञान, ये सारी पुस्तकें, ये सारी विद्याएँ, यह सारी बुद्धि—किस काम आयी ? उस परम दानशीलका देखे विना हृदयमें सन्तोष कैसे हो ? जो प्रेमसे भगवान्‌का भजन करता है, उसको ऐसी बुद्धि देते हैं कि वह उनके साथ जुड़ जाय—बुद्धियोगी हो जाय। वह बुद्धियोग भगवान्‌के पास पहुँचा देता है। यह अवरज्ञान है।

जब अवरज्ञान प्राप्त हो जाता है, बुद्धि भगवान्‌के साथ जुड़ जाती है, तब भगवान्‌का सिंहासन बोलता है—**तेषामेवानुकम्पार्थम्**। कहते हैं, भगवान् अपनेसे मिलनेकी बुद्धि देते हैं, और वे भगवान्‌के पास पहुँच जाते हैं। जब भगवान्‌के पास पहुँच जाते हैं तब भगवान्‌का हृदय द्रुत होकर बह जाता है। **अनुकम्पार्थं तेषामेव नान्येषाम्**—केवल उन्हींपर भगवान्‌की कृपा होती है, सबपर नहीं।

एक आदमी जेलमें कैद है। उसके आचरणसे राजा प्रसन्न हुआ। प्रसन्न होकर उसने आज्ञा दो कि इसको जेलसे छोड़ दो। उसने कहा—हम सिर्फ जेलसे छूटना नहीं चाहते ! हम तो आपके महलमें, आपके रनिवासमें रहकर आपकी सेवा करना चाहते हैं। बोले ना भाई—'जेलसे तो हम छोड़ दें लेकिन अभी हम तुमको अपने महलमें नहीं रख सकते। रनिवासमें नहीं रख सकते।' जेलसे छूटना दूसरी बात है और महलमें रहकर खास-खवासी विशेष सेवाका पात्र बनाना—दूसरी बात है। यहाँ भगवान् बोलते हैं—मैं अनुकम्पा करता हूँ—कृपा करता हूँ, दया करता हूँ। एक दया होती है, मनुष्यको दुःखसे छुड़ा दे ! यह छुड़ानेकी दया है। हम रास्ता चलते किसीको दुःखी देखते हैं तो उसको दुःखसे छुड़ाते हैं। दुःख इसको क्यों हुआ ?

इसने कोई बुरा काम किया है, पाप किया है—अच्छा आओ

पापसे भी छुड़ा दें। देखो बेटा, अब चोरी मत करना, जूआ मत खेलना, अब नशा मत करना—इससे बुद्धि भ्रष्ट होती है—दुःखसे बचा देना और दुःखके कारण बुरे कामसे बचा देना यह पापसे मुक्ति है, दुःखसे मुक्ति है, यह भी मुक्ति है। पापसे मुक्ति तो प्रायश्चित्त करके भी होती है, परन्तु पापके फल तापसे जो मुक्ति है, वह तो बिना भगवद्-कृपाके नहीं होती। क्योंकि वह तो हुकुम हो चुका है—दण्ड भोगनेकी आज्ञा दी जा चुकी है, अब उस आज्ञाको वापिस करना—राष्ट्रपति क्षमा कर दे, यह बात दूसरी है। भगवान् क्षमा करें यह बात दूसरी है और सुप्रीम कोर्टका ऑर्डर हो गया यह बात दूसरी है। जो पाप करता है उसको ताप मिलता है।

उपदेशक लोग उपदेश करके पापसे छुड़ा देते हैं और भगवान् कृपा करके तापसे छुड़ा देते हैं और दुःख और पाप दोनोंकी हेतु है वासना—वह अपने चित्तमें रहती है। हम बाहर किसीकी वजहसे पाप करते हैं, यह बात गलत है। हमारा मन ही ऐसा आकृष्ट हो जाता है, खिंच जाता है, प्रलोभनमें फँस जाता है कि उससे हम पाप करने लगते हैं। वासनासे भगवान्की भक्ति बचाती है। पापसे शिक्षा देनेवाले लोग बचा सकते हैं। तापसे भगवान् कृपा करके बचा सकते हैं।

परन्तु जो वासनाएँ अपने हृदयमें आती हैं, वे तो भगवान्की सत्तामें तो आती ही हैं, भगवान्के प्रकाशमें तो आती ही हैं। उनके देखते-ही-देखते आती हैं। उनसे बचाती है भक्ति। भगवान् भी वासनाओंके उदयको नहीं रोक सकते। क्योंकि सारी विश्व-सृष्टि उनकी बनायी हुई है। कालिय नागको जब पीटने लगे पाँवसे तो उसकी पत्नियोंने छुड़ाया। स्त्रियोंका आदर पहले भी बहुत अधिक था। कालिय नागको ऐसे नहीं छोड़ा, लेकिन जब

उनकी श्रीमती आकर बोली 'छोड़ दो महाराज' तब छोड़ दिया। छोड़ दिया तब कालिय नागने पूछा—

त्वया विश्वमिदं सृष्टम्....

तुमने यह सारी दुनिया बनायी और उसमें ब्राह्मण बनाया, क्षत्रिय बनाया, प्रकृति, महत्तत्त्व, सबकी सृष्टि तुमने की तो तुमने साँप बनाया कि नहीं ? कृष्णने कहा—हाँ, साँप मैंने ही तो बनाया है। अच्छा, तुमने साँपके अन्दर विष दिया कि नहीं ? दिया। उनका क्रोधी स्वभाव बनाया कि नहीं ? हाँ, बनाया। अच्छा तो, साँप भी तुमने बनाया, जहर भी तुमने दिया, क्रोधी स्वभाव भी तुमने दिया—यह मानते हो न ? हाँ मानते हैं। तब—बस, अब हमको कुछ नहीं कहना है !

आपकी मर्जी हो तो अनुग्रह करो, आपकी मर्जी हो तो निग्रह करो। कृष्णने कुछ जबाब नहीं दिया। उसके सिरपर पाँव रखकर अपनी मुहर लगा दी। बोले—अब जाओ तुम्हारी मर्जी हो वहाँ रहो, अब गरुड़ तुमको सतावेंगे नहीं, क्योंकि मेरी मुहर है। मत्पादलाञ्छितम्—मेरे चरणोंकी मुहर तुम्हारे सिरपर लग गयी, जाओ आजाद हो तुम !

वासना छुड़ाती है। क्योंकि भक्ति भी एक वासना है, वह भगवद् वासना है—शान्त होकर भगवान्से एक होना, भगवान्की सेवा करना, भगवान्से मित्रता करना, भगवान्से स्नेह करना—जैसे अपने पतिसे, अपने यारसे प्रेम करते हैं, वैसा प्रेम करना। अनेक रूप धारण करके—हमारे हृदयमें भक्ति देवी क्रीड़ा करने लगती हैं तो सारी वासनाएँ भगवान्के साथ जुड़ जाती हैं। इससे व्यवहारमें कोई बाधा नहीं पड़ती।

व्यवहार तो शारीरिक है। सारी वासनाएँ भगवान्से जुड़ जाती हैं। आप चाहे स्वामीके पाँव दबा लो, चाहे उनके कन्धेपर

हाथ रखकर चल लो—चाहे उनको अपनी गोदमें लेकर दूध पिलाओ—चाहे पति-पत्नीके समान उनसे प्यार कर लो—वेदोंमें इन सभी भावोंके मन्त्र आते हैं। भगवान्‌के साथ यह सम्बन्धवाली बात भी वैदिक है।

अभारतीय सम्प्रदायोंमें पुत्रके रूपमें या पतिके रूपमें या मित्रके रूपमें भगवान्‌से प्रेम करनेकी विधि नहीं है। सूफी लोग भगवान्‌से प्रेम करते हैं पर उसमें सम्बन्ध नहीं है। सम्वन्ध रहित प्रीति है, निर्मल प्रीति है। हमारी भारतोय संस्कृतिमें, वैदिक संस्कृतिमें भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़कर प्रेम कर सकते हैं। सम्बन्ध जुड़नेसे एक भाईसे जो प्रेम करना चाहिए, एक पुत्रसे जो प्रेम करना चाहिए—वह भगवान्‌से हो जाता है।

तात मात, गुरु सखा तुम सब विधि हितु मेरो।
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावे॥

छुट्टी हो गयी! हम सब कुछ नहीं। हम तो मोमकी पुतली होकर तुम्हारे सामने खड़े हैं। मोम है—'मानिये जो भावे।' तुम्हारी मर्जी हो—बेटा बना लो। तुम्हारी मर्जी हो मित्र बना लो। तुम्हारी मर्जी हो—अपना प्रियतम बना लो, पत्नी बना लो। 'मोहि तोहि—नाते अनेक—मानिये जो भावे।' सारे रिश्ते भगवान्‌से हैं, उनके हाथमें यह जीवन समर्पित है। गोस्वामीजीने कह दिया—'मानिये जो भावे।' हमको तो चाहिए तुम्हारा सान्निध्य! हम तुम्हारे पास रहना चाहते हैं।

ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावे।

वासनाओंके जो विविध रूप हैं—सभी रूपोंमें हम भगवान्‌के साथ जोड़ सकते हैं। यहाँ तक कि भागवतमें तो शत्रुता करनेवाले भी भगवान्‌को प्राप्त करते हैं। ऐसे दृष्टान्त अनेक हैं। वेदके

मन्त्रोंको और गोपियोंको जिस भगवान्‌की प्राप्ति होती है, उसी भगवान्‌की प्राप्ति शिशुपाल आदिको भी होती है। क्यों होती है? बोले—स्मरणात्। स्मरण तो सामान्य ही है—जैसे भक्त स्मरण करता है वैसे शत्रु भी स्मरण करता है।

शिशुपाल स्मरण करता है द्वेषसे तो जिन्दगीभर जलता रहता है और मित्र स्मरण करता है प्रेमसे तो रसास्वादन करता है और मरनेके बाद स्मरण तो एक चमत्कार दिखाता है। वह यह है कि जिसका स्मरण किया उसके साथ एक हो जाओगे। वासनाओं पर विजय भक्तिसे होती है। पापसे छुड़ाना एक बात, दुःखसे छुड़ाना दूसरी बात, वासनासे छुड़ाना तीसरी बात है और यह सब होता कैसे है? जब भगवान् बुद्धियोग देते हैं।

सबके ऊपर बुद्धि बैठी हुई है। स्मरण होता है। चरित्र होता है, अन्नमय कोशमें। क्रिया होती है, प्राणमय कोशमें। वासनाएँ हैं मनोमय कोशमें। बुद्धि है विज्ञानमय कोशमें। यही सबका नियन्त्रण करती है। जिसको हम अच्छा समझते हैं, उसको पानेका मन हो जाता है। जिसको बुरा समझते हैं, उसको छोड़नेका मन हो जाता है और छोड़ने-पानेका मन होता है, तब कुछ करनेका मन हो जाता है और जब कुछ करनेका मन होता है तब मिल जाते हैं—वही हो जाते हैं।

भगवान् बुद्धियोग देते हैं। बुद्धियोगके बाद एक अहम्‌की ग्रन्थि होती है—वह जो अहम्‌की ग्रन्थि है वह झूठी है। लेकिन पड़ गयी। अहम् और इदम्‌की—चेतन और जड़की ग्रन्थि होती है। हमको एक जादूगर मिला था—एक ही नावपर बैठ गये थे—उसने मेरे सामने पचीस गाँठ लगायी। मैं देख रहा था बिल्कुल ठीक गाँठ थी। हमको गाँठ मालूम पड़ रही थी। हाथमें लेकर

देख लिया। पर उसने जो खींचा तो सब-की-सब गाँठ—मानो कुछ थी ही नहीं—लगती नहीं थी। गोस्वामीजी बोलते हैं—

जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई। जद्यपि मृषा छूटत कठिनई॥

'मुधा भेद जद्यपि कृत माया।'—यह भेद-बुद्धि जितनी है वह माया है—माया माने जादूका खेल। आप माया शब्दके चक्करमें न पड़ें—संस्कृतमें न जाने किंभूत, किमाकार माया होती होगी। माया शब्दकी परिभाषा ही है कि जो है उसका दीखना बन्द कर दे और जो नहीं है, उसको दिखाने लग जाय—उसका नाम माया है—माया माने जादूका खेल। यह एक जादूका खेल दिखायी पड़ रहा है। ग्रन्थिको अध्यास बोलते हैं—अध्यास माने दो चीजकी गाँठ—जरासन्ध। जरासन्धका नाम तो आपने भागवतमें पढ़ा ही है। दो टुकड़े उसके अलग-अलग थे। जरा राक्षसीने, अविद्याने—चेतन और जड़ दोनोंको जोड़कर एक बना दिया और भीमसेनने श्रीकृष्णके संकेतसे—ज्ञानसे—जरासन्धके दो टुकड़े किये।

भागवत पढ़नेकी भी एक रीति है। भगवान्‌से प्रेम हो और भगवान्‌की कृपा उतर आवे और कृपा कर दें भगवान्! यह जो मायाका चक्कर है न—हम प्रेम करना चाहते हैं तुमसे और तुम हमें उँगलीसे दिखा रहे हो दूसरेको। यह कोई प्रेमकी बात हुई! हम तो चाहते हैं भगवान्‌को और भगवान् बता दें—नहीं-नहीं उधर। हम तो भगवान्‌को देखना चाहते हैं और भगवान् ही हमको दिखें और अपनेको दिखावें—यह बात चाहिए। वह जो ग्रन्थि है—छूटत कठिनई। यदि सत्य मानकर इस गाँठको खोलना चाहोगे और उलझ जायेगी।

हमारे जनेऊ रखनेका एक ढङ्ग है। हम उसको इस ढङ्गसे रखते थे कि मालूम पड़ेगा कि बिलकुल सजाके-सँवारके गाँठ

लगाके रखा हुआ है—यदि हम उसको खोलें तो बिलकुल सीधा, बिना गाँठके खुल जाय और अनजान आदमी उसको खोले तो एकदम उलझ जाय। जनेऊको रखना और खोलना भी एक कला है। यह जो जड़, चेतनकी ग्रन्थि है, यह बिलकुल झूठी है और अज्ञानके कारण ही मालूम पड़ती है।

इसको हम ज्यादा खोलकर इसलिए नहीं बताते हैं कि कोई यह न समझे कि हमारी घर-गृहस्थीमें, हमारे व्यवहारमें बाधा डालना चाहते हैं। धन छोड़नेमें आदमीको तकलीफ होती है न! लेकिन आप बताओ धनके साथ आपकी गाँठ कहाँ है? कहीं ग्रन्थि है? क्या धनके मनमें है कि मैं इनका हूँ। क्या धन तुम्हारा है? तुम्हारे मनमें यह गाँठ बन गयी है—तुम अलग, धन अलग और मनमें गाँठ बन गयी कि धन मेरा। यह तो, 'जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई'।

'जदपि मृषा छूटत कठिनई।' वह गाँठ रहेगी तो नहीं! गाँठ तो सच्ची है नहीं। दुनियामें कोई चीज किसीकी नहीं है। कहीं कोई बन्धन नहीं है। बन्धनके नामपर लोग इसको कबूल नहीं करते। बन्धन खुले मुँह लोगोंके सामने आता नहीं। नहीं, हमको बन्ध नहीं चाहिए—तो ब्रह्माजीने उसके मुँहपर एक सम्‌की चादर दे दी। सम्‌की टोपी लगा दी। जहाँ बन्धके मुँहपर सम् लगा—बोले हम भी सम्बन्ध चाहते हैं। अरे वह सम्‌की आड़में है तो बन्धन ही न!

बन्धनपर एक झूठा परदा सम्‌का लगा दिया—उपसर्ग माने जो मूल धातुके अर्थमें परिवर्तन दिखा दे। आहार, प्रहार, विहार, संहार—बहुत खुला है—एक ही तो हार है। संहारका हार पहनोगे? नहीं पहनेंगे। प्रहारका हार पहनोगे? नहीं पहनेंगे। आहार? हाँ-हाँ आहार तो चाहिए—विहार तो चाहिए।

हार तो वही है। यह बन्धन जो है वह झूठा है, कल्पित है और यह अन्धेरेमें मालूम पड़ता है कि मैं बँधा हुआ हूँ। असलमें कहीं बँधे हुए नहीं हैं। कहीं भी, कोई भी, बन्धन इस आत्माके लिए नहीं है। स्वतन्त्र देश, देशान्तरमें नहीं—काल, कालान्तरमें नहीं, रूप, रूपान्तरमें नहीं—कहीं भी बन्धन नहीं—एक अज्ञान आपके बीचमें पड़ गया है—**अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्** गीतामें भगवान् कहते हैं—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

इस अज्ञानने ज्ञानको ढक दिया है। ज्ञानके अभावमें ज्ञानको ढक दिया है? नहीं, अभाव किसीको ढकता नहीं है। यह अद्भुत है—किसी वस्तुका अभाव, किसीको आवृत नहीं कर सकता। तब! **अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्**का क्या अर्थ है? वहाँ ज्ञान विशेषका अभाव है। जो ज्ञान भगवान् देते हैं, वह ज्ञान तुमको अभी प्राप्त नहीं हुआ और तो ज्ञान है—तुम्हारे जैसा राजनीतिका ज्ञान और किसीको नहीं है। तुम्हारे जैसा भूगोलका ज्ञान और किसीको नहीं है। ठीक है, तुम्हारे जैसा किताबी ज्ञान और किसीको नहीं है। बड़े भारी विद्वान् हो—ऐसी अक्कल निकालते हैं कि सात-तालेमें रखी हुई चीजको देख लेते हैं।

ठीक, आपको सब ज्ञान प्राप्त है, परन्तु वह ज्ञान प्राप्त नहीं है, उसीको अज्ञान कहते हैं। और सारे ज्ञान प्राप्त हैं—आप न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, बौद्ध, जैन सारे शास्त्र आप जानते हैं, परन्तु वह ज्ञान प्राप्त नहीं है। कौन-सा ज्ञान? जिस अज्ञानके अन्धकारके नीचे यह जीव दब गया है। अपने आपको नहीं देख पाता। ऐसा अन्धेरा होता है, जिसमें अपना हाथ अपनेको नहीं दीखता, अपनी उँगली नहीं दीखती, अपना शरीर नहीं दीखता है।

यह वह अन्धकार है जिससे अपने आपका दर्शन बन्द हो गया है। हम अपने आपको नहीं देख पाते। अज्ञान माने ज्ञानका-विशेषाभाव। क्योंकि ज्ञानका अभाव तो कभी हो ही नहीं सकता, इसलिए अज्ञान ज्ञानाभावरूप नहीं होता है, ज्ञान विशेषाभावरूप होता है। खास तरहका ज्ञान नहीं है—कोई खास तरहका ज्ञान माने परमात्माका ज्ञान, आत्माका ज्ञान, ब्रह्मका ज्ञान, ज्ञाता-ज्ञेयके भेदसे रहित ज्ञान। वह सच्चा ज्ञान नहीं मिलता है। **अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्**—आओ-आओ, श्रीकृष्ण भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे पुकारा—एकसे कहा आओ, हम तुम्हें ज्ञान देते हैं। महाराज, मैं बड़ा पापी ! हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा—मैं पापी आदमी—हमको आप ज्ञान क्या देंगे ? मैं ज्ञानका पात्र नहीं हूँ। बोले—नहीं, डरो मत—मेरी बात सुन—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञान-प्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

साफ कह दें, इतना बड़ा आश्वासन आपको किसी उपनिषद्में नहीं मिलेगा। किसी वेद-वेदान्तमें नहीं मिलेगा। वे तो कहेंगे अन्तःकरण शुद्ध करके आओ। गुरुजी कहेंगे—चेलाजी, पहले अन्तःकरण शुद्ध करो—पाँव दबाओ हमारा, तब अन्तःकरण शुद्ध होगा। हाथ जोड़ो, सेवा करो—तब। पहले अन्तःकरण शुद्ध करके आओ। अभी तुम्हारे हाथ गन्दे हैं। सत्रह बार माटी हाथमें लगाओ तब शुद्ध हो जाओगे। यह देखो, यह कृष्णका ज्ञान है—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

दुनियामें जितने पापी हैं सब पापियोंको इकट्ठा करलो—**सर्वेभ्यः पापेभ्यः** और उसमें भी **पापकृत्तमः**—तीन पापी सबसे बड़े छाँटो। पापकृत्, पापाकृत्तर, पापकृत्तम। जिससे बड़ा दुनियामें और कोई

पापी न हो, यदि वही तुम हो—भगवान् कहते हैं, आजाओ हमारी गोदमें, आजाओ।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।

क्या करेगा पाप, क्या करेगा तुम्हारा वर्ण, क्या करेगी तुम्हारी जाति, क्या करेगा सम्प्रदाय—मैं हूँ न इस नावको खेनेवाला! 'सर्वं ज्ञानप्लवेनैव'—प्लव माने नाव-जहाज। आसमानमें प्लव चले उसको प्लेन बोलते हैं। बिल्कुल वही धातु है—प्लवन—पानीपर चले तो बोलते हैं नाव और यह आकाशकी नाव है। संस्कृतमें तरी, तरणी शब्द है नावके लिए।

यह आपकी जो मोटर है वह मृत्तरी है। यह माटीपर चलनेवाली नाव है। पानीपर जो चलती है वह पानीपर चलनेवाली नाव है। मेंढक जैसे उछलकर एक जगहसे दूसरी जगह जाता है उसको मण्डूकप्लुति बोलते हैं। धातु बिलकुल वही है—प्लवन आओ, हमारी नावपर बैठो। ब्राह्मणोंके लिए और नाव होगी—क्षत्रियोंके लिए और होगी। वैश्योंके लिए और होगी। शूद्रोंके लिए अन्य होगी। पुण्यात्माओंके लिए और होगी?

श्रीकृष्ण बोले, हम तो ऐसी नाव लेकर आगये, जिसपर ब्राह्मण भी बैठें, क्षत्रिय भी बैठें। पुण्यात्मा भी बैठें और पापीसे पापी भी बैठ जायँ। ढूँढ लो शास्त्रको, ऐसी नाव लेकर अबतक कोई आया है कि नहीं? यह जेलमें पैदा होनेवाला जानता है कि जेल कैसी होती है? यह ग्वालेके घरमें रहनेवाला बोला—पुण्यात्माओंके लिए जो लोग नाव लेकर आते हैं, उनको आने दो! हमारी नावपर तो पतित-से-पतितके लिए भी जगह बनी हुई है। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनम्। विदुलोपाख्यान है न महाभारतमें (उद्योगपर्व १३३–१३६)।

विदुलाका बेटा हारकर आकर घरमें सो गया था। विदुलाने कहा अरे, यह क्या करता है? नयी सेना बना। किसकी सेना बनावें? जो समाजमें बहिष्कृत है, जिनको कोई पूछनेवाला नहीं है। जो दीन हैं, जो हीन हैं—उनकी सेना बना।

उत्थातव्यं, जागृतव्यं, योक्तव्यं भूति कर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥
(१३५.२९–३०)

उठो, जागो—अच्छे काममें लग जाओ। और उसमें जो तकलीफ पड़ती है, उसका अनुभव मत करो। और निश्चय करो कि तुम्हें सफलता मिलेगी। **भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा। सततमव्यथैः**—पीड़ा आती है, आने दो। तुम कहो, हमको सफलता मिलेगी। चले चलो। **चरैवेति-चरैवेति।** यह गीता ही ज्ञानकी नौका है—कोई ज्ञानकी नौका लकड़ीकी या आल्युमोनियमकी या स्टीलकी या प्लास्टिककी नहीं है। यह जहाज है—गीता। आओ-आओ, **सर्वं ज्ञानप्लवेनैव**—इस ज्ञानकी नावपर बैठ जाओ **सर्वं वृजिनं संतरिष्यसि। वृजिनम्**के साथ **सर्वम्** और जोड़ दिया। सारे पाप-तापसे पार हो जाओगे। ऐसा खेवैया, अगर जेलमें पैदा न होता—अगर ये ग्वालोंके घरमें न रहता, अगर इसको जहर पिलानेवाली पूतना आकर तकलोफ न देती, तो शायद ऐसी नाव उसके पास न होती!

सब तरहसे **अपि चेत्सुदुराचारो भजते माम्** भक्तिका मार्ग दुराचारीके लिए भी खुला है। ज्ञानका मार्ग पतित-से-पतितके लिए भी खुला है। जातिहीनके लिए भी खुला है। हमारे गीताका ज्ञानी ऐसा ज्ञानी है कि जो **विद्या-विनय-संपन्ने ब्राह्मणे गवि-हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च**—सबमें एक परमात्माको देखने-

वाला। तो ज्ञानकी नाव लेकर वह खेवैया—वह कन्हैया—वह दाऊजीका भैया आया। सर्वं वृजिनम्—अनादि कालसे अबतक जो तुमने स्वर्ग-नरकमें पुनर्जन्ममें आने-जानेके लिए जो भी कर्म किये हैं, उन सब कर्मोंसे छुट्टी सम्यक् तरिष्यसि—बिलकुल पार हो जाओगे। आओ, ज्ञानकी नौकापर आकर बैठ जाओ!

कैदकी स्त्रियोंको छुड़ाकर अपने घरमें पटरानियोंकी बराबरीका स्थान देना—यह है किसीके बूतेकी बात? यह है कृष्णका जीवन, इन्द्रकी पूजा छुड़ाकर पहाड़की पूजा करवाना—यह क्या आजके भी किसी पण्डितके दिमागकी बात हो सकती है जो कि इन्द्रकी पूजा छुड़ा दे और पहाड़की पूजा करवा दे। यह धरती स्वर्गसे बड़ी है—स्वर्गकी दिव्य भूमिसे उत्तम है—यह माटीकी भूमि आप लोगोंको शायद अच्छी न लगे!

कई लोग कहते हैं कि हमको गोपियोंकी चर्चा और प्रेमकी चर्चा पसन्द नहीं है। हम आपसे पूछते हैं—कुब्जाका उद्धार करनेवाला सृष्टिमें है कोई दूसरा? जातिहीन, आचारहीन कंसके शरीरमें मालिस करनेके लिए सामग्री लेकर जा रही थी कंसके घर, क्या उसकी सुन्दरतापर श्रीकृष्ण रीझ गये? क्या उसकी जातिपर रीझ गये श्रीकृष्ण? क्या वह जिसकी सेवा करनेके लिए जा रही थी—उसके उद्देश्य ऊँचे हैं? कंसकी सेवा, बड़ा पवित्र उद्देश्य था? वह कुबड़ी देखनेमें बड़ी सुन्दर थी? आप कहेंगे—यह क्या किया? जो दुनियाका कोई नेता, कोई सुधारक, कोई उद्धारक नहीं कर सकता, वह किया। यह हैं श्रीकृष्ण, अनुकम्पाकी, कृपाकी मूर्ति लेकर, दयाकी मूर्ति लेकर पतितोंका उद्धार करने, दीनोंका उद्धार करनेके लिए, जो साधनहीन हैं, उनका उद्धार करनेके लिए, जो कुसाधन हैं उनका उद्धार करनेके लिए।

कृष्ण कहते हैं—बाबू, हम तुम्हारे मसालची बननेको तैयार हैं। आप देखते हैं—भगवान्‌का मसालची रूप है।

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

मसाल छोटी मोटी नहीं है। भास्वता—सूर्यके समान। भास्वान् संस्कृतमें सूर्यको कहते हैं। भास्वान् सूर्यका एक नाम है और उसकी तृतीया विभक्तिके एक वचनमें 'भास्वता' प्रयोग बनता है। हमारा यह ज्ञान-दीपक; दीपक नहीं है—यह सूर्य है। यह वह सूर्य है जिसने कभी अन्धकार देखा नहीं। रात दिनका हम लोग भेद देखते हैं न! भागवतमें बहुत बताया है—विचार्यमाणे तरणाविवाहनी—आप विचार करके देखो कि सूर्यमें दिन-रातका भेद होता है क्या?

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौस्त ऋतज्ञभावात्।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥
(१०.१४.२६)

यह भव, बन्ध-मोक्ष, यह जन्म, यह मृत्यु—यह मोक्ष क्या है? बोले, अज्ञानके नाम हैं—भला, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त, अद्वितीय परमात्मामें—ये जन्म-मरण, ये बन्धन-मोक्ष क्या हो सकते हैं? केवल अविचारसे मालूम पड़ते हैं। तब? विचार्यमाणे तरणौ—सूर्यके बारेमें विचार करो। उसमें कभी रात-दिनका भेद होता है? क्या उसने देखा कि यह रात है, यह दिन है? तो भगवान्‌ने कहा—लो, हम तुम्हें एक नया सूर्य देते हैं। ज्ञानदीपेन भास्वता—यह ज्ञानका नया सूर्य और यह तुम्हारे ज्ञानको प्रदीप्त करनेवाला सूर्य, हम देते हैं—इस नये सूर्यकी रोशनीमें देखो

बाबा, कुछ भी दिखाओ—यह अज्ञानान्धकार हमारा तो जाता

नहीं है। यह तो हमारे पीछे ही पड़ गया। बोले नहीं आत्म-भावस्थः नाशयामि—अज्ञानान्धकारका नाश तुमको नहीं करना पड़ेगा। नाशयामि क्रियाका कर्ता कौन है ? अहम्—भगवान् कहते हैं—मैं नाश करूँगा। तुम्हारे अज्ञानको मैं मिटाऊँगा। कैसे मिटाओगे ? जब आत्माको आत्मज्ञान होता है तब अज्ञानकी निवृत्ति होती है। बोले, मैं ही तुम्हारा आत्मा हूँ न ! तुम्हारे आत्मभावमें मैं स्थित हो जाऊँगा। अपना अज्ञान अपने मिटाये मिटता है। दूसरेके मिटाये नहीं मिटता। एक बात आपको वेदान्तियोंकी सुनाते हैं, पर हम दूसरी भाषामें बोल देते हैं। क्योंकि भाषापर हमको कुछ ज्यादा आग्रह नहीं है।

हम ज्ञानका आदर करते हैं। भाषाके बन्धनमें थोड़े ही हैं ?

ब्रह्मवेद आदि ब्रह्मविदताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत करत भेद भ्रम छेद ॥

यह १०० वर्ष पुराना दोहा जब भाषाका झगड़ा नहीं था—तबका विचार-सागरका (निश्चलदासजी कृत) दोहा है। जो ब्रह्मको जानता है, वह ब्रह्मज्ञानी है। वह जो बोलता है, उसका नाम है वेद—वह चाहे भाषामें या संस्कृतमें हो—वह तो ब्रह्मको छिन्न-भिन्न कर देता है। तुलसीदासजीने कहा—'भाषा बद्ध करब मैं सोई'—मैं उसी रामायणको भाषामें बोलूँगा। भाषाका ख्याल मत करो।

वेदान्तियोंकी बात है। वे कहते हैं कि रूप देखनेके लिए आँखकी जरूरत होती है। यदि आपके आँख है तो आप देख लेंगे कि यह हरा है कि लाल है—आँख चाहिए—माने प्रमाणसे प्रमेयका ज्ञान होता है। प्रमेयका ज्ञान होनेके लिए प्रमाण चाहिए। (यदि ब्रह्मविद्या आपके हृदयमें आगयी)—काशीमें ऐसे उदाहरण

मिलते हैं। पण्डितजी पढ़ा रहे हैं। हम जानते हैं। दो-पाँच रुपयेकी भी लालच करते हैं वे—और पढ़ाते हैं वेदान्त।

कोई-कोई साधु ऐसा पढ़नेवाला आता है—कोई-कोई ऐसा जिज्ञासु आता है कि पण्डितजी तो रह जाते हैं 'गुड़' और वह जिज्ञासु चेला ऐसी चीनी होकर निकलता है कि देखते ही बनता है। गुरु जब महावाक्यका अर्थ उसको समझाने लगते हैं—पण्डितजी खुद नहीं समझते हैं और चेला समझकर महान् अनुभवी हो जाता है। इसीसे इसे बोलते हैं कि ईश्वरसे जब सिद्ध महात्मा पैदा होते हैं तब उनको गुरुकी जरूरत नहीं होती—ज्ञान अपने आप आता है।

हिरण्यगर्भसे जब विराट् पैदा होते हैं तब विराट्को गुरुकी जरूरत नहीं होती—ज्ञान अपने आप आता है। विराट्में जब नारायण प्रकट होते हैं तब उनको भी गुरुकी जरूरत नहीं होती। जब सनकादि पैदा होते हैं, तो उनके भी कोई गुरु नहीं। तब—जो प्रमाणके अधीन विद्या होती है, वह बतानेवालेकी अपेक्षा नहीं रखती है। वहाँ केवल प्रमाण, वह ब्रह्मविद्या चाहिए—इसीसे जनकादिको ऐसी अवस्थामें ज्ञान होता है, जहाँ ज्ञानकी कोई सामग्री नहीं है।

यह महाराज, श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं बोलकर ज्ञान नहीं कराता हूँ—**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।** मैं बोलकर, उपदेश देकर ज्ञान नहीं देता हूँ। मैं तो जिसके ऊपर कृपा करता हूँ, उसके आत्म-भावमें स्थित हो जाता हूँ—उसका आत्मा—जो मैं देखता हूँ सो वह देखता है—जो वह देखता है सो मैं। देखनेवालेमें किसी प्रकारका भेद नहीं होता। अज्ञानका नाश मैं करता हूँ।

भाई मेरे, धन्यवाद देने लायक तो कोई बात नहीं है। हमारे

सारे श्रोताओंको जब मैं देखता हूँ कि मेरी ओर देख रहे हैं, किसीसे आँख मिल जाती है। किसीको देखता हूँ कि उनके चेहरेपर मुसकान आगयी, खुश हो गये! बस, और क्या चाहिए—आपकी एक मुसकान! आपकी एक चितवन हमारे लिए सबसे बड़ी दक्षिणा है। आप लोगोंने इतनी शान्तिसे, इतने प्रेमसे, इतने हृदयसे श्रवण किया। आपने तो हमको कृतज्ञ बना दिया क्योंकि आप अगर प्रेमसे नहीं सुनते तो मैं बोलता क्यों? अभी देखो मञ्जुश्री बेटी—कैसा बढ़िया स्वागत-सत्कार कर रही थी और आयोजन करनेवालोंका आभारी होना—धन्यवाद देना, यह सब शिष्टाचारकी बात है।

संन्यासियोंका एक शिष्टाचार भी आपको सुना देता हूँ। साधु लोग कैसा शिष्टाचार करते हैं—

> आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदोपि वा।
> सम्माननं च न ब्रूयात् यतिधर्म-परायणाः॥

धर्मनिष्ठ संन्यासीको चाहिए कि किसीको यह न कहे कि आइये-आइये और किसीको यह भी न कहे कि जाइये-जाइये और किसीको यह भी न कहे कि रहिये-रहिये। अपना बड़ा-से-बड़ा मित्र आजावे—उसका भी सम्मान करनेकी जरूरत नहीं होती है। जैसे, आप लोगोंका शिष्टाचार होता है—१५ मिनिट पहले जाकर सड़कपर खड़े हो गये और आनेवालोंको नमस्कार और हाथ मिलाना। जाने लगे तो आगतं स्वागतं कुर्यात्। गच्छतं पृष्ठतोऽनुयात्। कोई आवे तो उनका स्वागत करो और जाय तो उसको विदा करो—उसके पीछे-पीछे थोड़ी देर चलो। यह मनुस्मृतिका स्वागत है। गृहस्थोंके लिए यह शिष्टाचार है।

शिष्टाचारमें भी फरक होता है। सबके लिए एक ही

शिष्टाचार नहीं होता। अपने तो संन्यासी केवल गेरुआ कपड़ाके संन्यासी हैं। एक दिन भी मनमें यह बात पैदा नहीं हुई—एक क्षणके लिए भी—जिस दिन दण्ड ग्रहण किया, उस दिन भी कि मैं संन्यासी हूँ, जिस दिन हमको दण्ड दिया गया और जिस दिन हमारे सिरपर गुरुजीने पूजा की, उस दिन भी मेरे मनमें यह नहीं आया कि मैं संन्यासी हूँ। इसलिए मैं संन्यासियोंके शिष्टाचारका पालन नहीं करता। लेकिन धन्यवाद तो मैं अपनेको देता हूँ कि मेरे द्वारा आप लोंगोंको थोड़ी बहुत खुशी—प्रसन्नता, सुख मिलता है।

हम यह मङ्गलाशासन करते हैं कि अगले दिनोंमें भी हम और आप ऐसे ही सुखसे, हँसते-खेलते मिलें और मङ्गलमें मिलें, कल्याणमें मिलें। भगवान्‌की कृपामें, उनकी भक्तिमें, उनके ज्ञानमें—जैसे हम लोग मिलते रहे हैं—वैसे मिलते रहे हैं—और आयोजकोंका नाम लें तो क्या यही लोग आयोजक हैं—मैं भी आयोजक हूँ। इस आयोजनमें जितना आयोजक और कोई हो सकता है, उससे अधिक मैं हूँ। इससे अपनेको क्या धन्यवाद देना, क्या आशीर्वाद देना। आशीर्वाद भी देते हैं तो ऐसे देते हैं—

धर्मे मतिरस्तु, कृष्णे रतिरस्तु।

धर्ममें मति हो—कृष्णमें रति हो!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

❀ सत्साहित्य पढ़िये ❀

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज
द्वारा विरचित

१. माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण)	१०.००
२. माण्डूक्य-प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण)	७.५०
३. माण्डूक्य-प्रवचन (अद्वैत प्रकरण)	४.५०
४. माण्डूक्यकारिका-प्रवचन (अलातशान्ति-प्रकरण)	
५. कठोपनिषद्-प्रवचन—१	९.००
६. कठोपनिषद्-प्रवचन—२	१२.००
७. अपरोक्षानुभूति-प्रवचन	६.००
८. मुण्डकसुधा	३.७५
९. ईशावास्य-प्रवचन	४.००
१०. सांख्ययोग (दूसरा अध्याय)	९.७५
११. कर्मयोग (तीसरा अध्याय)	६.००
१२. ध्यानयोग (छठाँ अध्याय)	६.००
१३. ज्ञान-विज्ञान-योग (सातवाँ अध्याय)	६.००
१४. विभूतियोग (दसवाँ अध्याय)	५.२५
१५. भक्तियोग (बारहवाँ अध्याय)	८.००
१६. ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (तेरहवाँ अध्याय)	९.७५
१७. पुरुषोत्तम योग (पन्द्रहवाँ अध्याय)	५.००
१८. गीता-दर्शन—१	५.५०
१९. गीता-दर्शन—२	५.००
२०. गीता-दर्शन—३	४.००
२१. गीता-दर्शन—४	५.००

बृहद् सूची-पत्र निम्नलिखित पतेपर माँगें—

— सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट —

'विपुल' २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग, मालाबार हिल

बम्बई—४००००६

फोन : ८१७९७६